शिवयोगरत्नम्

श्री ज्ञानप्रकाशाचार्यविरचितम्



प्रो. डॉ. राधेश्याम चतुर्वेदी

शोधप्रकाशन ग्रन्थमाला— ७८

शिवयोगरत्नम्

श्री ज्ञानप्रकाशाचार्यविरचितम्

(शैवभारतीशोधप्रतिष्ठानविद्वद्भिः संशोधितम्)

हिन्दीव्याख्याकारः

प्रो. डॉ. राधेश्यामचतुर्वेदी

शास्त्रचूड़ामणिविद्वान्

पूर्वाचार्यः— संस्कृतविभागे, कलासंकाये

काशीहिन्दूविश्वविद्यालये, वाराणस्याम्।

शैवभारती-शोधप्रतिष्ठानम्

डी. ३५/७७, जंगमवाड़ीमठः, वाराणसी - २२१ ००१

प्रकाशकः
शैवभारतीशोधप्रतिष्ठानम्
डी. ३५/७७, जंगमवाड़ीमठः
वाराणसी - २२१ ००१

प्रथमं संस्करणम् : २०१५

मूल्यम् : रु. १५०.००

अक्षरसंयोजनम्
शिवशक्ति कम्प्यूटर प्रोसेस
जंगमवाड़ीमठ, वाराणसी - २२१ ००१

मुद्रकः
मित्तल ऑफसेट
सुन्दरपुर, वाराणसी ।

Research Publications Series — 78

ŚIVAYOGARATNAM

of

JÑĀNAPRAKĀŚĀCĀRYA

(Edited by the scholars of Shaiva Bharati Shodha Pratishthanam)

With the commentary in Hindi by

Prof. Dr. Radheshyam Chaturvedi

Ex-Professor, Department of Sanskrit, Faculty of Arts

Banaras Hindu University, Varanasi

SHAIVA BHARATI SHODHA PRATISHTHANAM

D. 35/77, Jangamawadimath, Varanasi - 221 001

Published by :
SHAIVA BHARATI SHODHA PRATISHTHANAM
D. 35/77, Jangamawadimath
Varanasi - 221 001
Phone : (0542) 2450546

First Published 2015

ISBN 978-93-82639-18-3

Price : Rs. 150.00

Laser Typeset at :
Shiva-Shakti Computer Process
Jangamawadimath
Varanasi - 221 001

Printed at :
Mittal Offset
Sundarpur, Varanasi

शैवभारती-शोधप्रतिष्ठान-संस्थापकानां



श्रीकाशीविश्वाराध्यज्ञानसिंहासनाधीश्वराणां

श्री १००८ जगद्गुरु-डॉ. चन्द्रशेखरशिवाचार्यमहास्वामिनां

शुभाशीर्वचनम्

"शिवयोगरत्नम्" नामक इस ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद के साथ प्रकाशन करते हुए हमें अपार हर्ष का अनुभव हो रहा है। इस ग्रन्थ के प्रारंभ के गद्यभाग में बताया गया है कि शालिवाटीपुर के निवासी ज्ञानप्रकाशाचार्य ने देवीकालोत्तर, सर्वज्ञानोत्तर, स्कन्दकालोत्तर आदि ग्रन्थों की सहायता से शिवयोगरत्नम् नाम के इस ग्रन्थ की रचना की है। इस ग्रन्थ की रचना में जिन-जिन ग्रन्थों से सहायता ली गई है, उसकी जानकारी यहाँ दिये गये प्रथम परिशिष्ट से मिलती है। दूसरे परिशिष्ट में दी गई श्लोकार्धानुक्रमणी में उनका स्थाननिर्देश भी कर दिया गया है। फ्रेंच संस्करण में दी गई टिप्पणियों में भी उनका परिचय यत्र-तत्र मिलता है। इस ग्रन्थ का प्रथम संस्करण सन् १९७५ में पांडिचेरी से हुआ था। इसका सम्पादन श्रीमान् टाम मिचेल ने प्रस्तावना और सर्वांगपूर्ण टिप्पणियों के साथ फ्रेंच भाषा में अनुवाद भी किया।

ज्ञानप्रकाशाचार्य को यहाँ शालिवाटिपुर का निवासी बताया गया है। फ्रेंच प्रस्तावना से हमें पता चलता है कि यह स्थान श्रीलंका (सीलोन) में स्थित था। श्रीलंका के बौद्धों और तमिल-भाषाभाषी जनता के बीच कलह आधुनिकता के कारण उपजा है। लगभग दो हजार वर्ष का श्रीलंका का इतिहास हमें बताता है कि बौद्धों और जैनों के साथ घात-प्रतिघात के रूप में शैव तमिलसाहित्य का भी विकास हुआ। इतिहास की इस महनीय उपलब्धि को संकीर्ण धार्मिक दृष्टिकोण ने फलने-फूलने नहीं दिया। श्रीलंका के शालिवाटिपुर के निवासी श्री ज्ञानप्रकाशाचार्य के इस ग्रन्थ की उपलब्धि अब हमें इस प्रकार के परस्पर सामंजस्यपूर्ण अध्ययन की ओर प्रवृत्त करती है।

जैसा कि आगे प्राक्कथन में बताया गया है, यहाँ फ्रेंच भाषा की सामग्री का उपयोग उसके अंग्रेजी अनुवाद की सहायता से किया गया है। इस कार्य में हमारी सहायता काशी में ही रच-बस गये इस विषय के प्रकाण्ड विद्वान् डॉ. मार्क डिच्कोफस्की ने तथा सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय में फ्रेंच भाषा के अध्यापन में तथा अन्य शोधसामग्री के सम्पादन में निरत विदुषी डॉ. विनीता सिंह ने की है। हिन्दी अनुवाद के कुछ स्थलों का संशोधन करने में भी इनका महनीय सहयोग रहा है। निःस्वार्थभाव से इस कार्य में निरत इन लोगों को हम किन महनीय शब्दों से संयोजित करें, इस विषय में विज्ञ पाठक ही हमारी सहायता कर सकते हैं।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के धर्मविज्ञानसंकाय में संस्कृतभाषा के प्रो. राधेश्याम चतुर्वेदी ने यहाँ के अनेक ग्रन्थों को 'ज्ञानवती' नाम के भाषानुवाद से अलंकृत किया है। पहले काशी के ही आर्यमहिला महाविद्यालय के दर्शन विभाग के अध्यक्ष के रूप में कार्यरत और वर्तमान में का.हि.वि. के धर्मविज्ञानसंकाय में अतिथि-प्राध्यापक के रूप में कार्यरत डॉ. रमा घोष का तथा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के केन्द्रीय ग्रन्थालय में कार्यनिरत डॉ. जी.सी. केण्डदमठ का अंग्रेजी भाषा की इस सामग्री को राष्ट्रभाषा का रूप देने में महत्त्वपूर्ण सहयोग रहा है।

इस संस्थान से हिन्दी अनुवाद के साथ संस्कृत के अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। इनको सुपरिष्कृत रूप देने में सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के सांख्ययोगतन्त्रागम विभाग के अध्यक्ष डॉ. शीतलाप्रसाद उपाध्याय तथा हिन्दू विश्वविद्यालय के धर्मविज्ञान-संकाय में शोधरत श्री नीहार पुरोहित अपने व्यस्त समय में से थोड़ा समय निकाल कर इस कार्य के प्रति निरन्तर पूरी आस्था के साथ लगे रहे हैं। शैवभारती शोध प्रतिष्ठान के निदेशक आगमशास्त्र के मर्मज्ञ विद्वान् पं. व्रजवल्लभ द्विवेदीजी ने इस संस्करण को पूरी तरह देखकर अनुवादकों और अन्य कार्यरत सभी विद्वानों को मार्गदर्शन करते हुए अपना बहुमूल्य प्राक्कथन लिखकर दिया है। इसी तरह मुद्रण-कार्य में अहर्निश लगे हुए श्री चिदानन्द ओ. हिरेमठ (कसगी) इस संस्थान के ग्रन्थों को आकर्षक अक्षर-संयोजन के रूप में सुन्दर स्वरूप देते रहे हैं। इन सब महानुभावों को हम अपने मंगलाशीर्वाद से इनकी सर्वविध उन्नति के लिए नवरात्र के शुभ अवसर पर भगवती दुर्गाम्बा निरन्तर इसी तरह की सत्प्रेरणा से ओतप्रोत करती रहे, यही पवित्र कामना करते हैं।

इन सभी महानुभावों के सहयोग से यह अभिनव संस्करण विज्ञ पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया जा सका, अतः हम इन सभी महानुभावों को संभूय-समुत्थान के कर्ता के रूप में सबके प्रति एक साथ मंगलभावना व्यक्त करते हैं।

इत्याशिषः



प्राक्कथन

सर्वात्मशम्भु की सिद्धान्तप्रकाशिका का प्रकाशन हो चुका था, यह ज्ञात होने पर भी शैवभारती शोधप्रतिष्ठान के द्वारा इसका पुनः परिष्कृत संस्करण प्रस्तुत किया गया, उसी तरह अब हम ज्ञानप्रकाश शिवाचार्य के 'शिवयोगरत्नम्' नामक ग्रन्थ का भी अभिनव संस्करण निकालने जा रहे हैं। इसका भी पाण्डिचेरी से फ्रेंच भाषा के अनुवाद आदि के साथ सन् १९७५ में अच्छा संस्करण निकला है। अब हम फ्रेंच भाषा के अनभिज्ञ जिज्ञासुओं के लिये राष्ट्रभाषा हिन्दी के अनुवाद के साथ इसका नया संस्करण प्रस्तुत कर रहे हैं।

पूर्व संस्करण की अपेक्षा इसमें उस संस्करण में दिये गये पाठभेदों में से अपनी दृष्टि से उत्कृष्टतम पाठों का चयन कर उन्हें मूल ग्रन्थ में स्थान दिया गया है और तदनुसार ही भाषानुवाद में भी संशोधन प्रस्तुत किया गया है। ग्रन्थ के प्रारंभ की प्रस्तावना में दक्षिणभारत में विकसित मेयकण्डदेव के पूर्ववर्ती और परवर्ती काल के सिद्धान्तशास्त्र का तमिल वाङ्मय की सहायता से सर्वांगपूर्ण परिचय दिया गया है। इस कार्य को तमिल सिद्धान्तशास्त्र की प्रसिद्ध विदुषी डॉ. रमा घोष ने प्रामाणिक रूप से प्रस्तुत किया है। स्वाभाविक रूप से फ्रेंच संस्करण के उपोद्घात में दी गई विशिष्ट सूचनाओं को भी हिन्दी-भाषी जनता और संस्कृत भाषा के विद्वानों के लिये प्रस्तुत किया जाय, यह तो आवश्यक ही था। कुछ स्थलों पर हिन्दी भाषा के अनुवाद से भी फ्रेंच अनुवाद की तुलना की गई है। यह लिखने में हमें कोई संकोच नहीं है कि फ्रेंच भाषा की सामग्री का उपयोग हम उसके अंग्रेजी अनुवाद की सहायता से ही कर सके हैं।

परिशिष्ट भाग में प्रथमतः मूल ग्रन्थ में स्थान-स्थान पर उद्धृत ग्रन्थ-ग्रन्थकारों और मत-मतान्तरों की सूची दी गई है। द्वितीय परिशिष्ट में ग्रन्थ की श्लोकार्ध-सूची इस विशेषता के साथ दी गई है कि इस ग्रन्थ में स्मृत

विभिन्न ग्रन्थों का यथाशक्य स्थाननिर्देश करने का प्रयत्न किया जाय। प्रस्तावना में मूल ग्रन्थ में उद्धृत ग्रन्थ-ग्रन्थकारों और मत-मतान्तरों का संक्षिप्त परिचय देने की भी चेष्टा की गई है। हमारे लुप्तागमसंग्रह के द्वितीय भाग के उपोद्घात में इसका विस्तार देखा जा सकता है।

बौद्ध प्रज्ञापारमिताशास्त्र की तरह शैवागम के कालोत्तर आगम के भी अनेक संस्करण हुए हैं। इनका परिचय सार्धत्रिशतीकालोत्तर के परिशिष्ट में देखा जा सकता है। प्रस्तुत ग्रन्थ में उद्धृत अनेक वचन भी वहाँ देखने को मिलते हैं।

ग्रन्थकार का जन्म शालिवाटीपुर (धान की खेती का शहर) शालिवाटी (आधुनिक तिरुनेलवेली) जाफना जिला, श्रीलंका में एक किसान परिवार में हुआ। इन्होंने तिरुअन्तूर जाकर वहाँ अण्णास्वामी गुरुकुल के पुरोहित से शैव दीक्षा ली। इसके बाद वे चिदम्बरम् चले गये और वहाँ कुछ समय अध्यात्म-चर्चा में लगे रहे। बाद में वे बंगाल चले गये, जहाँ वे वेदान्त, मीमांसा आदि शास्त्रों में निष्णात विद्वान् की सेवा में अध्ययन-कार्य में लगे रहे। गुरु के कहने पर इन्होंने परीक्षा देना स्वीकार किया और उसमें पूरी चतुराई से सब प्रश्नों का उत्तर दिया। इससे गुरुजी सिर्फ आश्चर्यचकित ही नहीं हुए, बल्कि उन्हें नियमित शिष्य भी बना लिया। कुछ वर्ष के अंदर गुरुजी द्वारा पढ़ाये गये सभी शास्त्रों में ज्ञानप्रकाश ने निपुणता हासिल की और गुरुजी का आशीर्वाद लेकर वे पुनः दक्षिण आकर तिरुणामलै में बस गये। यहाँ के धर्माधिकारी ने उन्हें संन्यास प्रदान किया और शैवागम पढ़ाया।

बाद में वह चिदम्बरम् वापस आये। वहाँ उन्होंने शिवकामी मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया, तालाब खुदवाया, जो आज भी उनके नाम से जुड़ा है। यहाँ इन्होंने एक आश्रम भवन भी बनवाया, यहाँ वे अपने आखिरी दिनों तक रहे। इस शिवपुरी मठ में इनकी प्रतिमा स्थापित है, जो आज भी पूजी जाती है। अपने मूल स्थान की वजह से ये शालिवाटी के ज्ञानप्रकाश के नाम से जाने जाते हैं। ये चिदम्बरम् के ज्ञानप्रकाश और तिरुणामलै के ज्ञानप्रकाश के नाम से भी जाने जाते हैं, इसलिये कि वे उन स्थानों पर लम्बे समय तक रहे।

अरुळनन्दी शिवाचार्य द्वारा तेरहवीं शताब्दी में तमिल भाषा में रचित 'शिवज्ञानसिद्धियार' की छः प्राचीन टीकाओं में एक ज्ञानप्रकाश की भी है। इस ग्रन्थ के कारण ये तमिल भाषा के प्रसिद्ध लेखक के रूप में जाने जाने लगे। अरुळनन्दी शिवाचार्य की यह कृति मैकण्डदेव के शिवज्ञानबोध की बृहद् व्याख्या है। यह तमिल शैवसिद्धान्त का आधारभूत ग्रन्थ है। ज्ञानप्रकाश की शिवज्ञानसिद्धियार की टीका ही एकमात्र तमिल रचना है। उनके द्वारा रचित अन्य सभी कृतियाँ संस्कृत में हैं।

इसी आधार पर कुछ आधुनिक विद्वान् शैवसिद्धान्तशास्त्र को दक्षिणभारत में विकसित दर्शन मानते हैं। यह स्थापना ठीक नहीं है। यद्यपि द्वैत, द्वैताद्वैत और अद्वैतवादी आगमों की अवतारभूमि मध्यदेश है, ऐसा अभिनवगुप्त मानते हैं, तो भी कश्मीर के प्रत्यभिज्ञाशास्त्र के उद्भावक भट्ट उत्पल की तरह द्वैतवादी दर्शन के विषय में ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता, जिससे उसे दक्षिण का दर्शन माना जाय। इसके विपरीत सद्योज्योति शिवाचार्य से लेकर नारायणकण्ठ के पुत्र भट्ट रामकण्ठ पर्यन्त सभी विद्वान् कश्मीर के सिद्धान्ताचार्य हैं। इनके द्वारा स्थापित परम्परा का ही दक्षिण के अघोरशिव जैसे सिद्धान्ताचार्य अनुसरण करते हैं। शैवभूषण में परिगणित १८ पद्धतिकारों में पहले दक्षिण के अघोरशिव का नाम है। इस विषय में अभी तो हम इतना ही कह सकते हैं कि द्वैतवादी सिद्धान्तागमों के साहित्य और दर्शन की रक्षा एवं उनका परिवर्धन दाक्षिणात्य विद्वानों ने किया है।

भारत में किसी भी प्रदेश में विकसित साहित्य को वहाँ का नाम नहीं दिया गया है, क्योंकि पूरे देश के विद्वानों ने इसमें अपना-अपना योगदान किया है। अभिनवगुप्त के समय में केरल से एक प्रशिक्षु ने आकर उनसे विद्याध्ययन किया और अपने घर वापस जाकर वहाँ इस विद्या का प्रचार-प्रसार किया था। पूरे देश में यह स्थिति मान्य रही है। इसीलिये प्रत्यभिज्ञादर्शन पूरे देश की सम्पत्ति है। इस मान्यता को हमें छोड़ना नहीं चाहिये, अन्यथा पूरे देश के प्रति हमारी अखण्ड दृष्टि सुरक्षित नहीं रह सकेगी।

शिवधर्मोत्तर के एकवचन के प्रमाण से एक भारतीय विद्वान् यह सिद्ध करना चाहते हैं कि योग्यता के अनुसार गुरु अपने शिष्य को संस्कृत, प्राकृत अथवा स्थानीय भाषा के माध्यम से आगमों को समझावे।

संस्कृतैः प्राकृतैर्वाक्यैर्यश्च शिष्यानुरूपतः।
देशभाषाद्युपायैश्च बोधयेत् स गुरुः स्मृतः।।

वस्तुतः यह वचन आगमों से संबद्ध न होकर गुरु से संबद्ध है कि वह शिष्य की योग्यता के अनुसार उसे संस्कृत, प्राकृत अथवा स्थानीय भाषा के माध्यम से आगमों को समझावे।

शैवभारती शोधप्रतिष्ठान के इन और उन ग्रन्थों के विषय में हमने दो-तीन वर्ष पूर्व इसी तरह के उद्‌गार प्रकट किये थे, किन्तु वे विस्मृति के गर्त में विलीन हो गये। शिव-शक्ति कम्प्यूटर प्रोसेस के निष्णात संचालक श्री चिदानन्द ओ. हिरेमठ (कसगी) ने मेरी स्मृति को जगाकर पुनः इस कार्य में मुझे प्रवृत्त किया है। इनका यह कार्य मेरे लिये चिरस्मरणीय रहेगा।

इन्हीं विशेषताओं के साथ इस ग्रन्थ का यह नया संस्करण विज्ञ पाठकों के समक्ष समुपस्थापित किया जा रहा है।

सुधियां विधेयः
व्रजवल्लभद्विवेदी



प्रस्तावना

भारतीय धर्मदर्शन की शैवपरम्परा में दक्षिणभारत का शैव-सिद्धान्त विशेष महत्त्वपूर्ण एवं प्राचीन परम्परा है। इस धर्मदर्शन की प्राचीन परम्परा के प्रामाणिक ग्रन्थों में सन्त तिरुमूलर द्वारा रचित तिरुमन्दिरम् का विशिष्ट स्थान हैं। आगमाश्रित इस ग्रन्थ को लेखक ने स्वयं शैवसिद्धान्त के तात्त्विक, नैतिक एवं आध्यात्मिक तत्त्वों के विवेचन का आधार माना है। इस ग्रन्थ में यह भी उल्लेख मिलता है कि सन्त तिरुमूलर कैलास से दक्षिणभारत आकर अनेक वर्षों पूर्व (तीन हजार साल) प्राय: तीन हजार पदों के माध्यम से शैव-सिद्धान्त-दर्शन के विभिन्न तात्त्विक विषयों का आध्यात्मिक एवं सुसंघटित बौद्धिक विवेचन प्रस्तुत किया था। इस महान् ग्रन्थ के माध्यम से रचयिता ने शैवसिद्धान्त के दार्शनिक दृष्टिकोण को स्पष्ट एवं अन्यान्य दार्शनिक मतभेदों से स्वतन्त्र रूप से प्रतिष्ठित किया।

तमिल भाषा में रचित सम्पूर्ण शैवशास्त्र को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है— स्तोत्र एवं शास्त्र। पूर्व का स्तोत्र साहित्य, जो उच्चकोटि के साधकों की आध्यात्मिक रचनाएँ हैं, वास्तव में उत्तरकाल के सैद्धान्तिक विकास का मूल स्रोत एवं आधार है। इन रचनाओं को बारह ग्रन्थों में संकलित किया गया है, जिन्हें 'तिरुमुरई' कहते हैं। सन्त तिरुज्ञानसम्बन्दर (सातवीं शताब्दी) की रचनायें प्रथम तीन ग्रन्थों में समाहित की गई हैं। सन्त तिरुनावुक्करसर की, जिन्हें अप्पर भी कहा जाता है, महान् रचनाओं को चौथी, पाँचवीं एवं छठी तिरुमुरई के रूप में रखा गया है। तदनन्तर सन्त सुन्दरमूर्ति (नवीं शताब्दी) द्वारा रचित पदों का संकलन सातवीं और आठवीं तिरुमुरई में है। सन्त मणिक्यवाचकर की महान् कृति तिरुवाचकम् एवं तिरुक्कोवईयार कहलाती है। नवीं तिरुमुरई नौ भक्त कवियों की कविताओं का संकलन

है, जिसे तिरुवशैयप्पा-तिरुप्पलाण्डु कहा जाता है। दसवाँ ग्रन्थ महान् दर्शनिक सन्त तिरुमूलर का तिरुमन्दिरम् माना जाता है। ग्यारहवीं तिरुमुरई बारह भक्त कवियों की कविताओं का संकलन है। बारहवीं तिरुमुरई सन्त शेक्किलार द्वारा रचित 'पेरियपुराणम्' को माना जाता है। उक्त ग्रन्थ में तिरसठ महान् शैव-सन्तों के अलौकिक जीवनवृत्तान्त संकलित किये गये हैं। उक्त रचना बारहवीं शताब्दी की मानी जाती है।

इस ग्रन्थ के माध्यम से शेक्किलार जैसे महान् कवि की साहित्यिक महत्ता, ऐतिहासिक एवं पारम्परिक ज्ञान एवं शैवसिद्धान्त दार्शनिक तत्त्वों का गहन ज्ञान प्रकाशित होता है। उक्त ग्रन्थ में शेक्किलार ने 'शिवधर्म' एवं 'पशुधर्म' के नाम से जीवन को आध्यात्मिक एवं नैतिक दृष्टिकोण प्रदान किया। शेक्किलार ने महान् शिवभक्तों की जीवन-कथा एवं जीवन-दर्शन के रूप में 'पेरियपुराणम्' नामक महाकाव्य की रचना करके शैव-सिद्धान्त धर्म और दर्शन को सर्वमान्य मूर्त रूप प्रदान किया। उन्होंने 'तेवारम्' के रचनाकारों की तरह आणव मल को 'इरुळ' कहकर अन्धकार से उसकी तुलना की है। मायीयम्, सत्कर्म, असत्कर्म एवं तीन पाशों का उल्लेख करते हुए शिवकृपा को ही सर्वोच्च एवं सर्वशक्तिमान् तत्त्व कहा है। जिसके समक्ष सभी पाश शक्तिहीन हो जाते हैं। उत्तरकाल के सिद्धान्त-शास्त्रों का विकास उपरोक्त स्तोत्र साहित्य से धर्म तथा दर्शन के मौलिक दृष्टिकोण को प्राप्त करके ही हुआ है, ऐसा कहना गलत नहीं होगा।

सन्त सम्बन्दर, अप्पर एवं सुन्दरमूर्ति द्वारा रचित सात ग्रन्थों (तिरुमुरई) को समन्वित रूप से 'तेवारम्' कहा जाता है। सन्त उमापति शिवाचार्य ने सर्वप्रथम 'कलिबेनबा' नामक ग्रन्थ में उक्त सात तिरुमुरई को 'तेवारम्' के नाम से अभिहित किया गया है। उत्तरकाल में चौदहवीं शताब्दी के कवि इरट्टैयर ने एवं सत्रहवीं शताब्दी में एल्लप्पनावलर ने अपनी पुस्तक तिरुवरुणईक्कलम्बकम् में भी 'तेवारम्' का उल्लेख किया है। 'तेवारम्' शब्द में 'ते' शब्द का तात्पर्य ईश्वर तथा 'वारम्' शब्द का अर्थ स्तुति है। इन ईश्वर-स्तुतियों को संगीत के रूप में गाया जाता है, जिसमें ईश्वर के प्रति प्रेम को ही सर्वोच्च साधन के रूप में बताया गया

है। प्रेम-भक्ति ही वह माध्यम है, जिससे ईश्वर की कृपा निरन्तर वर्षित होती है। 'तेवारम्' स्तुतियों के माध्यम से भक्ति का प्रवाह अत्यन्त व्यापक रूप से प्रवाहित हुआ। इन आचार्यों ने अपने धार्मिक या आध्यात्मिक स्रोत को वैदिक धारा के रूप में भी स्वीकार किया एवं वेद के सार एवं तत्त्वार्थ को ही शिवज्ञान बताया। सन्त सुन्दरमूर्ति यजुर्वेद के श्रीरुद्र का स्तवन नित्य किया करते थे। उन्होंने पंचाक्षर मन्त्र को वेद का सारतत्त्व बताया है। तिरुत्तोण्डत्तोगई नामक ग्रन्थ में सुन्दरमूर्ति शिवभक्तों की महिमा का गान करते हुए उन्हें जाति-धर्म से निरपेक्ष मानते हैं। सन्त सम्बन्दर ने वैदिक उपासना का उल्लेख कई स्थानों में किया है। 'तेवारम्' के तीन रचनाकारों में सन्त तिरुज्ञानसम्बन्दर का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। सुन्दरमूर्ति ने उन्हें अपना पथप्रदर्शक माना है। सम्बन्दर ने अपनी रचना के प्रतिपाद्य विषय एवं भाव को वेदविहित तथा वेद का सार बताया है। अप्पर की (सन्त तिरुनावुक्करसर), जो प्राय: सम्बन्दर के ही समकालीन थे, कवितायें भावपूर्ण आत्मनिवेदन से प्रेरित भक्ति की सहज अभिव्यक्तियाँ हैं। 'तेवारम्' ग्रन्थ के प्रणेताओं ने ही सर्वप्रथम पति, पशु एवं पाश तत्त्व का तात्त्विक विवेचन किया है। आणव मल को मूल मल मानते हुए उसे केवल ईश्वर-शक्ति के द्वारा ही अभिभूत होने योग्य बताया गया है। ईश्वरीय कृपा को प्रकाश-स्वरूप मार्ग (ओली नेरी) कहा गया है। ईश्वर-चैतन्य के द्वारा ही आत्मा को आत्म-चैतन्य का बोध होता है एवं आत्मा पाश-बन्धन से मुक्त होती है। तेवारम् में अज्ञान-रूपी इस मूल मल की तुलना अन्धकार (इरुळ) से की गई है।

शैवसिद्धान्त दर्शन का द्वितीय स्तर मैकण्ड-शास्त्र से शुरू होता है, जो पूर्णत: अद्वैतवादी दृष्टिकोण का प्रतिपादन करता है। बारहवीं शताब्दी में श्रीकण्ठ द्वारा रचित ब्रह्मसूत्रभाष्य शिवाद्वैतवाद का प्रतिपादक है। शिवपुराण की वायवीयसंहिता एवं स्कन्दपुराण की सूतसंहिता के प्रभाव से ही सम्भवत: शिवाद्वैतवाद का प्रतिपादन हुआ। श्रीकण्ठ, 'देह एवं आत्मा' की तरह अद्वैतवाद का प्रतिस्थापन करते हैं। श्रीकण्ठ का यह शिवाद्वैतवाद ही शैवसिद्धान्त के अद्वैतवादी दृष्टिकोण का आधार है, ऐसा कहा जा सकता है। सोलहवीं शताब्दी में अप्पयदीक्षित द्वारा रचित

श्रीकण्ठ के भाष्य पर शिवार्कमणिदीपिका नामक टीका वेदान्त एवं सिद्धान्त, अर्थात् वैदिक एवं आगमिक धारा में सामंजस्य स्थापित करने वाला एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ का विशेष प्रभाव 'शिवज्ञानबोधम्' के प्रसिद्ध भाष्यकार शिवज्ञानयोगी पर पड़ा। तेरहवीं शताब्दी के सन्त दार्शनिक मैकण्डदेव 'शिवज्ञानबोधम्' नामक प्रसिद्ध सूत्रग्रन्थ के रचयिता हैं। उक्त ग्रन्थ को तमिल का ब्रह्मसूत्र बताया जाता है। मैकण्डदेव का 'शिवज्ञानबोधम्' एक ऐसा महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है, जिसमें शैवागमों के सामान्य दर्शन का विशेष वैयक्तिक आध्यात्मिक चेतना के साथ सामंजस्य स्थापित किया गया है। इस ग्रन्थ में वैदिक एवं आगमिक सामान्य दृष्टिकोण तथा विशेष आध्यात्मिक चेतना का संगतिपूर्ण समन्वय है। इस ग्रन्थ से पूर्व आगमशास्त्र का वागीश मुनिवर द्वारा प्रतिपादित 'ज्ञानामृतम्' नामक एक ग्रन्थ पाया जाता है। शिवज्ञानयोगी के अनुसार 'ज्ञानामृतम्' पौष्कर, मृगेन्द्र, मतंग इत्यादि शैवागमों के सामान्य दृष्टिकोण को प्रस्तुत करता है। एतदतिरिक्त तिरुबुन्दियार एवं तिरुक्कलिट्टप्पदियार नामक गुरु-शिष्य द्वारा रचित परिपूरक ग्रन्थ शिवज्ञानबोधम् से पहले पाये जाते हैं। शिवज्ञानबोधम् में शैवागम प्रतिपादित समस्त तथ्यों का दार्शनिक विवेचन है और इसीलिये शैवदर्शन के विकास में यह नवीन युग का सूत्रपात करते हैं, जिनमें आत्यन्तिक भेद एवं अभेद से भिन्न अद्वैतवाद का प्रतिपादन किया गया है। सत्य की साक्षात् अनुभूति ही वह आधार है, जिसमें सभी तथ्यों का सामंजस्य स्थापित हो जाता है। सत्य जीव के पशुत्व के परे वह स्वतःसिद्ध तथ्य है, जो स्वतन्त्र एवं निरपेक्ष रूप से प्रतिष्ठित होकर जीव को आप्लावित कर देता है। एतदतिरिक्त सर्वज्ञानोत्तर आगम, जो विशेषतः अद्वैतवाद का प्रतिपादन करता है, शैव-सिद्धान्त दर्शन को प्रभावित करने वाला एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है।

तेरहवीं शताब्दी में मैकण्डदेव द्वारा विरचित 'शिवज्ञानबोधम्' की संस्कृत प्रति रौरव आगम में प्राप्त होती है, ऐसा कहा जाता है। परन्तु यह निर्विवाद रूप से प्रतिपादित नहीं हो पाया है। इस सूत्र-ग्रन्थ के बाद इसी क्रम को विकसित करते हुए जिन ग्रन्थों की रचना हुई है, उनका विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है—

१. मैकण्डदेव के शिष्य सन्त अरुलनन्दी शिवाचार्य ने शिवज्ञानबोधम् के विशद भाष्य के रूप में शिवज्ञानसिद्धियार नामक एक स्वतन्त्र ग्रन्थ की रचना की है।

२. चौदहवीं शताब्दी में सन्त अरुलनन्दी शिवाचार्य के शिष्य सन्त उमापति शिवाचार्य ने शिवप्पिरकाशम् नामक एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ की रचना की है।

३. सोलहवीं शताब्दी में पाण्डिप्पेरुमाल एवं और कई विशद ग्रन्थों की रचनाएँ हुई, उनमें मापाडियम् (महाभाष्य) विशेष महत्त्वपूर्ण है।

एतदतिरिक्त 'मैकण्डशास्त्र' के नाम से चौदह शास्त्र-ग्रन्थ माने गये हैं, जो निम्नलिखित हैं— १. तिरुबुन्दियार, २. तिरुक्कलिदुप्पडियार, ३. शिवज्ञानबोधम्, ४. शिवज्ञानसिद्धियार, ५. इरुपाइरुपदु, ६. उण्मैवि-ळक्कम्, ७. शिवप्पिरकाशम्, ८. तिरुवरुट्पयन्, ९. विनावेण्बा, १०. पोट्रीपर्होदई, ११. कोडिक्कवि, १२. नेञ्चुविडुतूदु, १३. उणमैनेरी-विळक्कम्, १४. संकर्पनिराकरणम्। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त उमापति शिवाचार्य द्वारा रचित संस्कृत भाषा में पौष्करभाष्य, शतरत्नसंग्रह एवं शिवाग्रयोगिन् द्वारा ग्रन्थलिपि में शिवज्ञानबोधम् के महान् भाष्य लिखे गये हैं।

शिवज्ञानसिद्धियार के रचयिता सन्त अरुळनन्दी शिवाचार्य एक महान् दार्शनिक भी थे। उनकी विद्वत्ता के कारण उन्हें सकलागमपण्डित के रूप में अभिहित किया जाता है। उक्त ग्रन्थ की रचना दो भागों में की गई है— (१) परपक्कम् (परपक्ष), (२) सुपक्कम् (स्वपक्ष)। यहाँ तीन सौ अट्ठाईस (३२८) पदों के माध्यम से शैवसिद्धान्त के मुख्य तात्त्विक विषयों का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इस ग्रन्थ की महत्ता के कारण इस पर छः भाष्य-ग्रन्थों की रचना हुई है—

१. निम्बवलगिया- उक्त ग्रन्थ तमिल भाषा में केवल तमिल स्त्रोतों का उल्लेख करते हुए लिखा गया है।

२. मरैग्यानदेशिकर ने, जो संस्कृत एवं तमिल दोनों भाषाओं में पारंगत थे, इस ग्रन्थ की टीका लिखी है।

३. मरैग्यानदेशिकर के समसामयिक शिवाग्रयोगिन् (सोलहवीं शताब्दी) ने तमिल एवं संस्कृत भाषाओं में पाँच कृतियों की रचना की है, जो मुख्यत: सर्वज्ञानोत्तर एवं देवीकालोत्तर आगमों के ऊपर आधारित हैं।

४. ज्ञानप्रकाशर— जो पुन: सोलहवीं शताब्दी के हैं, शिवज्ञानसिद्धियार के वृत्ति-ग्रन्थ के रूप में 'शिवयोगरत्नम्' की रचना की।

५. शिवज्ञानयोगी— (अठारहवीं शताब्दी) ने तमिल एवं संस्कृत भाषा में महान् भाष्य-ग्रन्थ की रचना की। उन्होंने ज्ञानप्रकाशर के समर्थन में शैव-सिद्धान्त के तात्त्विक विवेचन को भी प्रस्तुत किया।

६. सुब्रह्मण्यदेशिकर— (१९वीं शताब्दी) ने भी भाष्य-ग्रन्थ की रचना की।

इनके अलावा आधुनिक काल में तिरुविड़ंगम एवं मुथैया पिल्लई नामक दो विद्वानों ने शिवाग्रयोगिन् भाष्य पर अच्छे ग्रन्थों की रचना की।

ज्ञानप्रकाशर ने सरल भाषा में शिवज्ञानसिद्धियार के तात्त्विक विवेचन पर 'शिवयोगरत्नम्' नामक जिस ग्रन्थ की रचना की है, वह शिवयोग पर विशेष मूल्यवान् ग्रन्थ है। उक्त ग्रन्थ में विद्वान् लेखक ने शिवयोग की विशिष्टता का प्रतिपादन किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि शिवाग्रयोगिन् द्वारा प्रतिपादित ग्रन्थ 'शैवसंन्यासपद्धति', जिसका उल्लेख पाँचवें एवं छठे श्लोक में प्राप्त होता है, सम्भवत: १५६४ ई. की रचना होगा। मरैज्ञानदेशिकर ने, जो प्राय: १५४५ ई. के थे, अपनी रचनाओं को प्रस्तुत किया। अत: यह अनुमान किया जा सकता है कि इन रचनाओं से प्रभावित होने के कारण ज्ञानप्रकाशर का समय सोलहवीं शताब्दी का होगा। तदनन्तर ज्ञानप्रकाशर की रचनाओं की आलोचना शिवज्ञानसिद्धियार के भाष्यकार शिवज्ञानयोगिन् ने 'शिव-समवाद-उरई-मरुप्पु' नामक ग्रन्थ में की है। शिवज्ञानयोगी के अनुसार मरैज्ञानदेशिंकर एवं शिवाग्रयोगिन् ही तमिल एवं संस्कृत में शैव-सिद्धान्त ग्रन्थों के सही व्याख्याकार हैं। इन्होंने ज्ञानप्रकाशर द्वारा रचित शिवज्ञानसिद्धियार की आलोचना की है। इसका कारण यह है कि उक्त

दो व्याख्याकारों से भिन्न विवेचना होने के कारण शिवज्ञानयोगिन् उक्त दो भाष्यकारों की रचनाओं को ही प्रामाणिक मानते हैं। शिवज्ञानयोगिन् का समय अनुमानत: १७८५ ई. से कुछ पहले है।

आचार्य ज्ञानप्रकाशर का जन्म शालिवाटीश्वरनगर (धान के ईश्वर का शहर) संक्षेप में शालिवाटी (आधुनिक तिरुनेलवेली) जाफना जिला, श्रीलंका में पाण्डी मालवा परिवार में हुआ। वहाँ से तिरुप्पुकलूर जाकर उन्होंने महान् पुरोहित अण्णस्वामी कुरुक्कळ से शैव दीक्षा ली। तदनन्तर चिदम्बरम् जाकर कुछ समय तक वहाँ निवास किया। फिर बंगाल में एक ब्राह्मण विद्वान् से वेदान्त, मीमांसा एवं तर्कशास्त्र का अध्ययन किया। ज्ञानप्रकाशर की प्रतिभा से प्रभावित होकर गुरु ने उन्हें सभी शास्त्रों के ज्ञान को प्रदान किया। तदनन्तर वे तिरुवणामलै गये एवं वहाँ के 'आदिनम्' से संन्यास प्राप्त किया तथा सारे शैवागमों का अध्ययन किया। बाद में पुन: चिदम्बरम् जाकर उन्होंने शिवकामी मन्दिर की स्थापना की, वहाँ एक तालाब खुदवाया व आश्रम बनवाया, जो अभी भी उनके नाम से प्रसिद्ध है। उनके देहावसान के बाद चिदम्बरम् में शिवपुरीमठ में उनकी मूर्ति की स्थापना हुई, जो आज भी पूजी जाती है। वे आज भी 'शालिवाटी के ज्ञानप्रकाश', 'चिदम्बरम् के ज्ञानप्रकाश' एवं 'तिरुवणामलै के ज्ञानप्रकाश' के रूप में अभिहित किये जाते हैं।

स्वामी ज्ञानप्रकाश ने शिवज्ञानसिद्धियार की व्याख्या 'शिव-समवाद' के रूप में की है, जो अन्य व्याख्याकारों से विशिष्ट है। शिवयोगरत्नम् में 'शिवयोग' की विशेष व्याख्या की गई है। उसके अनुसार 'शिवयोग' में स्वयं शिव ही आलम्बन हैं। अन्य सारे सांसारिक विषय वर्जित हो जाते हैं। शिव साधन तथा साध्य दोनों ही है। चित्त सर्वालम्बन-वर्जित होने के कारण निश्चल, निष्कम्प हो जाता है—

चञ्चलं निश्चलं कृत्वा निश्चलं न तु चालयेत्।
निराश्रयं सदा चित्तं सर्वालम्बनवर्जितम्।।१०।।

सांसारिक अवलम्बन से वर्जित होने पर स्वाभाविक रूप से चित्त अपने स्वरूप में लीन हो जाता है, जैसे इन्धन समाप्त होने पर अग्नि स्वयं शान्त हो जाती है। ज्ञानप्रकाशर के अनुसार—

ग्राह्याभावान्मनस्तद्वत् स्वयमेव प्रलीयते।
सर्वालम्बनशून्यं च धारयित्वा मनो हृदि।।१२।।

समस्त आलम्बनों से शून्य मन को हृदय, अर्थात् हृदय-गुहा में धारण करने के बाद जो स्पष्ट ज्ञान होता है, साधक को निरन्तर उसका अभ्यास करना चाहिये।

निष्प्रपंच, निरालम्ब की भावना को शिवयोग कहा गया है। कुम्भक के द्वारा प्राण का लय होने से चिदानन्दमय अवस्था आती है। वायु का आपूरण, अर्थात् पूरक प्राणायाम तथा रेचक भी चिदानन्दमयता को प्राप्त कराता है। पूरक और रेचक दोनों को छोड़कर योग में वायु का केवल धारण, अर्थात् कुम्भक ही उत्तम साधन माना गया है। मन के द्वारा मन का त्याग कर जीव कैवल्यावस्था को प्राप्त करता है। जब चैतन्य मन की सीमा से परे हो जाता है, तो यही मुक्ति का लक्षण है। "सर्वशून्य पद पर स्थित होकर जीव निर्वाण को प्राप्त करता है" इत्यादि श्रुतिवाक्य के अनुसार शिव एवं जीव दोनों एक ही भाव रूप वाले हैं।

स्वामी ज्ञानप्रकाशर के अनुसार 'दासोऽहम्', 'सोऽहम्', एवं 'अहमेव' इत्यादि ज्ञान भी भ्रम की ही स्थितियाँ हैं। इसलिए तीनों का त्याग कर 'शिवोऽहम्' की भावना करनी चाहिए, जो सर्वोत्तम ध्यान है। संसार के सभी पदार्थ किसी न किसी धर्म वाले होते हैं। मतंग आदि आगमों में शिव को परम, अचल, सर्वतोमुख और निष्कल तत्त्व कहा गया है। 'अहं द्रष्टा', 'अहं भोक्ता' इत्यादि वृत्तियों को करने वाले अहंकार के त्याग से अस्त्रयुक्त शुद्धविद्या के द्वारा समना पर्यन्त जाने वाली वृत्ति में वर्तमान पाश को छोड़कर जो स्वरूप का साक्षात्कार है, वही आत्मव्याप्ति है। शिवव्याप्ति इससे भिन्न प्रकार की है। 'शिवोऽहम्' के निरन्तर ध्यान से शिवत्वभाव को प्राप्त होने के कारण साधक शिव हो जाता है। साधक शिवानन्द को प्राप्त कर शिव के साथ नीर-क्षीरवत् समरस हो जाता है। शैवसिद्धान्त के अनुसार शुद्ध 'स्व' एवं शिव का तादात्म्य का तात्पर्य 'अनन्य-भाव' है। ज्ञानप्रकाशर के अनुसार शिव की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति निर्मल शिवानन्द है, यह शिव के साथ साम्य का वाद, अर्थात् सिद्धान्त है। शिव का समवाद ही यहाँ मुक्ति कही गई है।

आत्मतत्त्व की उपासना जीव को निरामय, निराधार, रंग-रूप से रहित (निरञ्जन एवं गुणातीत के रूप में) करनी चाहिए। आत्मा निराशय, निरालम्ब, अप्रमेय, निष्पन्न, स्वभावतः निर्मल और नित्य है, ऐसी उपासना करनी चाहिए। आत्मलाभ ही श्रेष्ठलाभ है। इसीलिये आत्मा की उपासना शिव के रूप में करनी चाहिए। अस्मितारहित चैतन्य ही शक्ति है। शाम्भवी और खेचरी मुद्राएँ समना की पूर्ववर्ती हैं। उन्मनी अवस्था ध्यान एवं सुषुप्ति है। उन्मनी अवस्था के अन्त में तुरीय या समाधि है। स्वात्मा या शिवसाक्षात्कार तुरीयातीत अवस्था है, जिसे उदग्र कहा गया है।

इस प्रकार स्वामी ज्ञानप्रकाशर ने 'शिवयोगरत्नम्' का प्रतिपादन आगमसम्मत सिद्धान्तों के साथ अद्वैतवादी दृष्टिकोण का समन्वय करते हुए किया है।

डॉ. रमा घोष
सदस्य, परामर्शदात्री समिति
शैवभारती शोध प्रतिष्ठानम्



शिवयोगरत्नम्

ज्ञानप्रकाशाचार्यविरचितम्

परिशिष्टद्वयोपेतम्

विषयानुक्रमणी



शिवयोगरत्नम्

ज्ञानप्रकाशाचार्यसंगृहीतम्

नमः शिवाय शक्त्यै च बिन्दवे शाश्वताय च।
गुरवे च गणेशाय कार्तिकेयाय धीमते।।

मैं शिव, शक्ति, शाश्वत बिन्दु, गुरु, गणेश और धीमान् कार्तिकेय (स्कन्द) को नमस्कार करता हूँ।।

श्रीशालिवाटिपुरनिवासिज्ञानप्रकाशाचार्यवर्येण शिवभावना-पाठकशिवभावनाफलसाक्षात्कारपाठकसार्थबोधकग्रन्थग्रन्थसंग्रहः क्रियते देवीकालोत्तर-सर्वज्ञानोत्तर-स्कन्दकालोत्तरादिके।

श्री शालिवाटिपुरनिवासी आचार्य श्री ज्ञानप्रकाश के द्वारा देवीकालोत्तर, सर्वज्ञानोत्तर, स्कन्दकालोत्तर आदि ग्रन्थों में संगृहीत शिवभावनाफल का साक्षात्कार करने वाले पाठकगण को बोध कराने वाले 'शिवयोगरत्न' नामक ग्रन्थ का संग्रह किया जा रहा है।

बहिराहितचित्तानां जायन्ते बन्धहेतवः।
बहिश्चित्तं निवार्यैव विन्दन् लोके न सीदति।।१।।

जिनके चित्त बाह्य विषयों में आसक्त हैं, उनके लिये बन्धन के हेतु उपस्थित होते हैं। जो चित्त को बाह्य विषयों से रोक कर आभ्यन्तर वस्तु अर्थात् आत्मा का ज्ञान करता है, वह इस संसार में कष्ट नहीं पाता।।१।।

तदेव जन्मसाकल्यं पाण्डित्यमिदमेव हि।
चलद्वायुसमं चित्तं निश्चलं ध्रियते हि यत्।।२।।

चलती हुई वायु, अर्थात् श्वास-प्रश्वास के साथ जो चित्त को निश्चल रखता है, वही जन्म की पूर्णता और पाण्डित्य है।।२।।

चित्ते चलति संसारो निश्चले मोक्ष एव तु।
तस्माच्चित्तं स्थिरं कुर्यात् प्रज्ञया परया बुधः।।३।।

जब तक चित्त चंचल रहता है, तब तक संसार का बन्धन रहता है। जब चित्त निश्चल हो जाता है, तब मोक्ष अवश्य मिलता है। इसलिये विद्वान् को चाहिये कि वह परा प्रज्ञा के द्वारा चित्त को स्थिर करे।।३।।

निरहङ्कृत् क्रियाशक्त्या प्रज्ञया यत्नयत्नतः।
अजपामन्त्रमध्यस्थबिन्दुना कृतकुम्भके।।४।।

सचलद्वायुना सार्धं निश्चलं ध्रियते मनः।

अहङ्काररहित क्रियाशक्ति, प्रज्ञा, प्रयत्न, अजपा मन्त्र[१] के मध्य में स्थित बिन्दु के द्वारा, कुम्भक प्राणायाम करने पर, चंचल वायु के साथ मन को निश्चल किया जाता है।।४।।

नैवोर्ध्वं धारयेच्चित्तं न मध्यं नाप्यधः क्वचित्।।५।।

अन्तर्भावविनिर्मुक्तं सदा कुर्यान्निराश्रयम्।
निद्रायां बोधयेच्चित्तं विक्षिप्तं क्षमयेत् पुनः।।६।।

चित्त को न ऊपर न मध्य और न अधःस्थान में स्थिर करना चाहिये। (अपितु वायु के साथ स्थिर करना चाहिये)। साधक को चाहिये कि वह चित्त को अन्तर्भाव से निर्मुक्त और आलम्बन रहित कर दे। निद्रा होने पर चित्त को उद्बुद्ध करे तथा विक्षिप्त होने पर उसे शान्त करे।।५-६।।

पक्षद्वयपरित्यागे संप्राप्ते नैव चालयेत्।
सदाभिभूयते चित्तं निद्रया स्मरणादिना।।७।।

दोनों पक्ष, अर्थात् निद्रा और विक्षेप का त्याग होने पर मन को चंचल नहीं बनाना चाहिये, वरन् स्थिर रखना चाहिये। चित्त निद्रा एवं स्मरण आदि के द्वारा सर्वदा अभिभूत होता रहता है।।७।।

बोधयित्वा प्रयत्नेन कुर्यात् स्वस्थं पुनः पुनः।
यदा स्थिरं भवेच्चित्तं नैव चाल्यं कथञ्चन।।८।।

---

१. हकारेण बहिर्याति सकारेण विशेत् पुनः।
हंसहंसेति मन्त्रं वै जीवो जपति सर्वदा।।

इस कारण चित्त का प्रयत्नपूर्वक उद्बोधन कर उसे बार-बार स्वस्थ, अर्थात् अपने स्वरूप में स्थित करना चाहिये। इस प्रकार के प्रयत्न से जब चित्त स्थिर हो जाय, तो फिर उसे चलायमान नहीं करना चाहिये।।८।।

न किञ्चिच्चिन्तयेत् तत्र स्थिरमेव तु कारयेत्।
आश्रयालम्बनं चित्तं तद्वत् कुर्यान्निराश्रयम्।।९।।

उस दशा में किसी भी वस्तु का या किसी प्रकार का चिन्तन नहीं करना चाहिये, वरन् उसे सदा स्थिर ही रखना चाहिये। चित्त सर्वदा आश्रयालम्बन रहता है, अर्थात् सदा किसी न किसी को विषय बनाता रहता है। उसे निर्विषय बनाना चाहिये।।९।।

चञ्चलं निश्चलं कृत्वा निश्चलं न तु चालयेत्।
निराश्रयं सदा चित्तं सर्वालम्बनवर्जितम्।।१०।।
मनोऽवस्थाविनिर्मुक्तं विज्ञेयं मुक्तिलक्षणम्।

चंचल चित्त को निश्चल बनाना चाहिये और एक बार निश्चल अर्थात् निर्विषय हो गया तो फिर उसे कभी भी चलायमान नहीं होने देना चाहिये। चित्त का निराश्रय और निरालम्बन होना साथ ही मानसिक व्यथा से विनिर्मुक्त होना मुक्ति का लक्षण है।।१०-११।।

निरिन्धनो यथा वह्निः स्वयमेव प्रशाम्यति।।११।।
ग्राह्याभावान्मनस्तद्वत् स्वयमेव प्रलीयते।

जिस प्रकार ईंधन समाप्त होने पर अग्नि स्वयं शान्त हो जाती है, उसी प्रकार ग्राह्य, अर्थात् विषय के अभाव में मन स्वयं अपने स्वरूप में लीन हो जाता है।।११-१२।।

सर्वालम्बनशून्यं च धारयित्वा मनो हृदि।।१२।।
यज्ज्ञानं जायते स्पष्टं तदभ्यासपरो भवेत्।

समस्त आलम्बनों से शून्य मन को हृदय, अर्थात् हृदय-गुहा में धारण करने के बाद जो स्पष्ट ज्ञान होता है, साधक को निरन्तर उसका अभ्यास करना चाहिये।।१२।।

विषये लोलु(प ? पं) चित्तं मर्कटादपि चञ्चलम्।।१३।।

सर्वशून्यपदे स्थित्वा ततो निर्वाणमेष्यति।
निरालम्बमिदं सर्वं निरालम्बप्रकाशितम्।।१४।।

निरालम्बमिदं कृत्वा निरालम्बो भविष्यति।
पातालाच्छक्तिपर्यन्तं सर्वमेतदभीप्सितम्।।१५।।

विषयों के प्रति लोलुप चित्त बन्दर से भी बढ़कर चंचल होता है। जब वह चित्त सर्वशून्य पद पर प्रतिष्ठित हो जाता है, तब निर्वाण की प्राप्ति होती है। यह सब निरालम्ब है, निरालम्ब के द्वारा प्रकाशित है। इसलिये चित्त को निरालम्ब बना कर साधक निरालम्ब हो जाता है। पाताल से लेकर शक्ति तत्त्व तक सब उस चित्त का विषय है। (इसलिये आ पाताल शक्ति पर्यन्त समस्त विषयों से इसे रहित बनाना चाहिये)।।१३-१५।।

भग्नं यैः शून्यमस्त्रेण ते स्मृताः शून्यवेदिनः।
भेदनं क्षुरिकास्त्रेण बन्धकत्वनिवर्तनम्।।१६।।

जिन्होंने अस्त्र से शून्य का भेदन कर दिया, वे शून्यवेदी माने गये हैं। क्षुरिका रूपी अस्त्र से संसार का भेदन बन्धन का निवर्तक होता है।।१६।।

मूलान्तस्थेन तेनेति तस्य नोच्चारणं पृथक्।
इदं मत्वेति पाठे तु मायाकारं विलोक्य सः।।१७।।

भग्नकृद्बन्निरालम्बः प्रभविष्यति भक्तिमान्।
नात्र किञ्चिद्बहिर्नान्तर्न मध्यं नाप्यधः क्वचित्।।१८।।

सर्वाकारं निराकारं स्वसंवेद्यं विराजते।

मूल के अन्दर स्थित उसके द्वारा (भेदन होता है) इस कारण उसका उच्चारण अलग से नहीं होता। ऐसा पाठ होने पर वह माया के आकार को देखकर भक्तिमग्न अपने बन्धनों को तोड़ कर निरालम्ब हो जायेगा। इस दशा में न कुछ बाहर रहता है, न अन्दर, न मध्य और न अधः। वह साधक ऐसी स्थिति में सर्वाकार निराकार और स्वसंवेद्य होकर विराजता है।।१७-१८।।

यद्यदालोक्य यो जन्तुः कुरुते कर्मसञ्चयम्।।१९।।

तद्गतिर्जायते यस्मान्निरालोकं तु चिन्तयेत्।
निष्प्रपञ्चनिरालोकमित्यर्थः प्रतिबोधितः।।२०।।

जो जीव जिस-जिस पदार्थ का अवलोकन कर जिस-जिस कर्मसमूह को करता है, वह उस गति को प्राप्त करता है। इसलिये निरालोक का चिन्तन करने पर ही यह मार्ग दिखता है। इसका तात्पर्य यह है कि यह निरालोक और निष्प्रपंच है॥१९-२०॥

व्योमाकारं महाशून्यं व्यापकं यो न भावयेत्।
संसारी स भवेल्लोके बीजकोशकृमिर्यथा।।२१।।

सर्वयोनिषु सर्वस्य महत् क्लेशं पुनः पुनः।
सर्वक्लेशं परित्यक्तुं महाशून्यं विचिन्तयेत्।।२२।।

जो मनुष्य व्योम के आकार वाले व्यापक महाशून्य की भावना नहीं करता, वह इस लोक में रेशम के कीड़े के समान संसारी होता है। वह समस्त योनियों में सब प्रकार का महाक्लेश बार-बार भोगता है। ऐसे समस्त क्लेशों के त्याग के लिये महाशून्य की भावना करनी चाहिये॥२१-२२॥

महाशून्यं शिवाकाशमग्राह्यं ग्राहकात्मकम्।
ग्राहकत्वाच्छिवः शून्यो ग्राहकत्वात् पुमानपि।।२३।।

महाशून्य शिवाकाश ग्राह्य, अर्थात् विषय नहीं है, वह ग्राहक है। ग्राहक होने से शिव शून्य है तथा ग्राहक होने के कारण पुमान् अर्थात् जीव भी शून्य है॥२३॥

मायाधर्मः शिवः शून्यः पशूनां पाशबन्धतः।
नाभावाच्छून्यमित्युक्तमन्यापेक्षतयाऽत्र तु।।२४।।

मायाधर्मी शिव पशुओं के पाशबन्ध से शून्य है। अभाव के कारण वह शून्य है, ऐसा नहीं। अन्य विषयों की अपेक्षा वह शून्य है, अर्थात् वह निर्विषय है॥२४॥

ज्ञानोत्पत्तिनिमित्तं तु क्रियाचर्याः प्रकीर्तिताः।
योगं सालम्बनं त्यक्त्वा निष्प्रपञ्चं विचिन्तयेत्।।२५।।

प्रश्न है कि यदि शिव निष्प्रपञ्च और शून्य है, तो फिर शिवत्व-प्राप्ति के लिये क्रियाओं का वर्णन क्यों किया गया? उत्तर है कि क्रिया एवं चर्या का विधान शैव ज्ञान के लिये किया गया है। इससे सालम्बन

योग, अर्थात् सविकल्प समाधि होती है। सालम्बन योग को छोड़कर निष्प्रपंच, अर्थात् निर्विकल्प शिव की भावना करनी चाहिये॥२५॥

निष्प्रपञ्चं निरालम्बं शिवयोगमितीरितम्।
ज्ञानोत्पत्तिपदेनात्र तस्य चिन्तनमुच्यते॥२६॥

निमित्तं तस्य विज्ञेयं क्रियासालम्बनादिकम्।
निश्वासोच्छ्वासरूपस्य हंसरूपस्य मध्यतः॥२७॥

मध्यबीजस्य नयनाच्चिदानन्दमयं भवेत्।
प्राणस्य लयनादेव कुम्भकेन भवेत् पुनः॥२८॥

वायोरापूरणं चैव रेचकं च तथैव च।
उभौ विसृज्य योगे तु वायोर्धारणमुत्तमम्॥२९॥

निष्प्रपंच, निरालम्ब की भावना को शिवयोग कहा गया है। पूर्वश्लोकस्थ 'ज्ञानोत्पत्ति' पद से उस शिव का चिन्तन कहा जाता है। क्रिया, आलम्बन आदि को उस चिन्तन का निमित्त जानना चाहिये। निःश्वास-प्रश्वास रूप हंस-मन्त्र के मध्य में स्थित मध्यबीज अनुस्वार रूपी नाद का नयन, अर्थात् चिन्तन करने से साधक चिदानन्दमय हो जाता है। कुम्भक के द्वारा प्राण का लय होने से चिदानन्दमय अवस्था आती है। वायु का आपूरण, अर्थात् पूरक प्राणायाम तथा रेचक भी चिदानन्दमयता को प्राप्त कराता है। पूरक और रेचक दोनों को छोड़कर योग में वायु का केवल धारण अर्थात् कुम्भक ही उत्तम साधन है॥२६-२९॥

प्राणायामश्च तत्प्रोक्तं सर्वैः केवलकुम्भकम्।
यावत् केवलसिद्धिः स्यात्तावत् सहितमभ्यसेत्॥३०॥

सब लोगों ने केवल कुम्भक को प्राणायाम कहा है। जब तक केवल कुम्भक की सिद्धि न हो जाय, तब तक पूरक और रेचक के सहित कुम्भक का अभ्यास करना चाहिये॥३०॥

अभ्यासात् कुम्भके सिद्धे रेचपूरकवर्जिते।
न तस्य दुर्लभं किञ्चित् त्रिषु लोकेषु विद्यते॥३१॥

इति श्रीचिन्त्यविश्वोक्तः शुद्धः केवलकुम्भकः।
शिवमन्त्रात्मना व्यक्तः शुद्धविद्याविवेकतः।।३२।।

अभ्यास के द्वारा पूरक और रेचक को छोड़कर कुम्भक के सिद्ध होने पर उस साधक के लिये तीनों लोकों में कुछ भी दुर्लभ नहीं रहता। ऐसा शुद्ध केवल कुम्भक चिन्त्य और विश्व नाम के आगमों के द्वारा कहा गया है। यह शुद्ध-विद्या तथा विवेक से शिवमन्त्र के स्वरूप में व्यक्त होता है।।३१-३२।।

क्षुरिकास्त्रभिदातोऽपि अहङ्कारलयान्वितम्।
केवलं कुम्भकं कृत्वा कृत्वा हृदि मनोलयम्।।३३।।

अचिन्त्यं चिन्तयेन्नित्यं ध्यातृत्वाद्ध्येयतां स्मरन्।
मितप्राकृतचित्तेन बुद्ध्यहङ्कारवर्त्मना।।३४।।

क्षुरिकास्त्र से भेदन के द्वारा अहङ्कार लय से युक्त केवल कुम्भक के द्वारा मन को हृदय में लीन कर अचिन्त्य का नित्य चिन्तन करना चाहिये। यह चिन्तन बुद्धि-अहङ्कार के रास्ते परिमित प्राकृत चित्त के द्वारा किया जाना चाहिये।।३३-३४।।

सकलध्यानशक्तेन चिन्मनोऽभिभवीकृता।
न ध्येयं नापि च ज्ञेयं शिवात्मकचिदम्बरम्।।३५।।

सम्पूर्ण ध्यान में लगे हुए तथा चित् के द्वारा मन को अभिभूत करने वाले साधक के द्वारा शिवात्मक चिदाकाश न ध्येय होता है, न ज्ञेय।।३५।।

चञ्चलं निश्चलं चित्तं जडं चिच्चैकवत् स्थितम्।
निश्चलं चलसंबन्धाच्चञ्चलं च समुच्यते।।३६।।

चंचल चित्त जब निश्चल हो जाता है, तब जड़ और चेतन एक सदृश हो जाते हैं। यदि निश्चल चित्त चंचल हो गया, तो वह चंचल कहा जाता है।।३६।।

चलं निश्चलसंबन्धान्निश्चलं च निगद्यते।
चलं च चित्तसंबन्धात् साकारध्यानकारकम्।।३७।।

चल चित्त निश्चल से सम्बद्ध होने से निश्चल कहा जाता है। वहीं चल चित्त चित् के साथ संबद्ध होने के कारण साकार ध्यान को करने वाला हो जाता है॥३७॥

प्रभिद्य प्राकृतं चित्तं विक्षिप्तादिविवर्जितम्।
व्याप्नोत्युपरि चिच्छक्तिर्निरुद्धे समनान्तकम्॥३८॥

प्रकृति के परिणामरूप चित्त, अर्थात् मन का भेदन कर उसे जब क्षिप्त-मूढ-विक्षिप्त अवस्थाओं से हीन बना दिया जाता है और चित्त एकाग्र अवस्था को पार कर निरुद्ध स्थिति में पहुँच जाता है, तब वह समना तक को व्याप्त कर लेता है।३८॥

मनसा तु मनस्त्यक्त्वा जीवः केवलतां व्रजेत्।
निद्रायां बोधयेच्चित्तं निश्चलं न तु चालयेत्॥३९॥

मन के द्वारा मन का त्याग कर जीव कैवल्य अवस्था को प्राप्त करता है। निद्रा से चित्त को उद्बुद्ध करना चाहिये और जब वह निश्चल हो जाय, तो उसे चंचल नहीं होने देना चाहिये॥३९॥

मनोऽवस्थाविनिर्मुक्तं विज्ञानं मुक्तिलक्षणम्।
तथा च पुनरेकत्र निश्चले मोक्ष एव तु॥४०॥

जब चैतन्य मन की सीमा से परे हो जाता है, तो यही मुक्ति का लक्षण है। जब वह एकत्र निश्चल होता है, तो यही मोक्ष है॥४०॥

सर्वशून्यपदे स्थित्वा ततो निर्वाणमेष्यति।
इत्यादिश्रुतिसूक्तेन पराक्प्रत्यक् च रूपिणम्॥४१॥

"सर्वशून्य पद पर स्थित होकर जीव निर्वाण को प्राप्त करता है" इत्यादि श्रुतिवाक्य के अनुसार वह निर्वाण पराक् प्रत्यक् रूपी है, अर्थात् शिव एवं जीव दोनों का एकीभाव रूप है॥४१॥

कथञ्चिच्छिवया पाशमुक्तव्यक्तस्वरूपिणा।
किञ्चिदाभासमात्रेण ज्ञानध्यानाधिकारिणा॥४२॥

मन जब किसी प्रकार शिवा के द्वारा पाश से मुक्त और स्वरूप का साक्षात्कार करने वाला हो जाता है तथा ज्ञान एवं ध्यान के अधिकारी

उस मन को अपने स्वरूप का रंच मात्र भी आभास हो जाता है, तो वह मन उन्मना के द्वारा अमितशक्तिवाला होकर शिव का ध्यान करने लगता है।।४२।।

उन्मनाऽमितचिच्छक्तिमनसा चिन्त्यते शिवः।
निर्बुद्ध्यमनुभवस्मृत्या चिन्मनःस्फुरणात्मनः।।४३।।

पुरुषत्रयमुद्दिश्य बोध्यवाक्यार्थसंस्मृतेः।
ये ध्यायन्ति परं शून्यं निष्कलं निरवस्थितम्।।४४।।

ते यान्ति परमं स्थानं जन्ममृत्युविवर्जितम्।

बुद्धिरहित अनुभव के स्मरण के द्वारा चिच्छक्ति से युक्त मन से स्फुरणरूपी तीन पुरुष (=बद्ध, मुच्यमान और मुक्त) को उद्दिष्ट कर बोध्यवाक्य के अर्थ का स्मरण करने के कारण जो लोग निष्कल स्थिर परमशून्य का ध्यान करते हैं, वे जन्ममृत्यु से रहित परमस्थान को प्राप्त होते हैं।।४३-४४।।

सर्वतत्त्वाद्यसंभिन्नं देहाद् भिन्नं तथैव च।।४५।।

अहमस्म्याद्यसम्भिन्नं चैतन्यं सर्वतोमुखम्।
आकाशमिव सर्वं तु सबाह्याभ्यन्तरं प्रिये।।४६।।

परानन्दस्वरूपं तु पश्यन्नानन्दभाग् भवेत्।

समस्त तत्त्वों से अभिन्न, देह से भिन्न, 'अहमस्मि' आदि के अर्थ से अभिन्न, चेतनस्वरूप, सर्वव्यापी और हे प्रिये! आकाश के समान सर्वव्यापी परानन्दरूप शिव का साक्षात्कार करने वाला परम आनन्द का भागी होता है।।४५-४६।।

आकाशं मानसं कृत्वा मनः कृत्वा निरास्पदम्।।४७।।

भाषां निर्भाषणं कृत्वा शिव एव भवेत् सुधीः।

आकाश को मन का विषय बनाकर, मन को निरालम्ब बनाकर, वाणी को शब्दरहित कर विद्वान् शिव ही हो जाता है।।४७।।

देहात् सूक्ष्मगतात् प्राणाच्चित्ताद् बुद्धेरहङ्कृतेः।।४८।।

सर्वस्माद् भिन्न एवाहं चिन्तयन् लभते चि(द?ति)म्।

मैं देह, सूक्ष्म प्राण, चित्त, बुद्धि और अहङ्कार इन सबसे भिन्न हूँ, ऐसा ध्यान करने वाला चित्स्वरूप को प्राप्त करता है।।४८-४९।।

सर्वभूतलये जाते यद्वद् व्योम सुनिर्मलम्।।४९।।

तद्वत् स्वरूपकं ध्यायेद् व्याप्तं चैव सुनिर्मलम्।

पृथिवी आदि भूतों का लय हो जाने पर जैसे स्वच्छ आकाश बचता है, अपने स्वरूप का उसी प्रकार व्यापक और निर्मल रूप में ध्यान करने से चिन्तक चित् तत्त्व को प्राप्त करता है।।४९-५०।।

अशरीरं यदात्मानं पश्यति ज्ञानचक्षुषा।।५०।।

तदा भवति शान्तात्मा सर्वतो विगतस्पृहः।
विदित्वा व्यापिनं देवं मुच्यते नात्र संशयः।।५१।।

साधक जब ज्ञानचक्षु के द्वारा अपने को अशरीरी समझने लगता है, तब वह शान्त आत्मा वाला और सब विषयों की स्पृहा से रहित हो जाता है। फलतः सर्वव्यापी दिव्य शिव को जानकर मुक्त हो जाता है। इसमें संन्देह नहीं।।५०-५१।।

अनादिविज्ञानमजं पुराणं
गुहाशयं निष्कलमप्रपञ्चम्।
निरञ्जनं निष्प्रतिमं निरीह-
मदृश्यमग्राह्यमचिन्त्यरूपम्।।५२।।

सनातनं ब्रह्म निरन्तरं यत्
पदे पदे सोऽहमिति प्रपश्येत्।
यो भावतस्तिष्ठति निष्प्रकम्पः
स ब्रह्मरूपोऽमृततामुपैति।।५३।।

साधक को चाहिये कि वह अनादि, विज्ञानस्वरूप, अजन्मा, पुराण, हृदयगुहा में रहनेवाले, निष्कल, प्रपञ्चशून्य, निरञ्जन, अप्रतिम, निरीह, अदृश्य, अग्राह्य और अचिन्त्य रूप वाले सनातन ब्रह्म को पदे-पदे, अर्थात् प्रतिक्षण और प्रत्येक स्थान में 'सोऽहं' के रूप में देखे। जो साधक स्थिर

भावयुक्त होकर ऐसा समझता है, वह ब्रह्मरूप होकर अमृतत्व को प्राप्त करता है।।५२-५३।।

योऽसौ सर्वगतो देवः सर्वात्मा सर्वतोमुखः।
सर्वतत्त्वमयोऽचिन्त्यः सर्वस्योपरि संस्थितः।।५४।।

सर्वतत्त्वव्यतीतश्च वाङ्मनोनामवर्जितः।
सोऽहमेवमुपासीत निर्विकल्पेन चेतसा।।५५।।

जो यह देव सर्वव्यापी, सर्वात्मा, सर्वतोमुख, सर्वतत्त्वमय, अचिन्त्य और सबके ऊपर स्थित है, साथ ही समस्त तत्त्वों से परे, वाणी, मन और नाम से रहित है, साधक को चाहिये कि वह ऐसे तत्त्व की, निर्विकल्प चित्त से 'सोऽहम्' के रूप में, अर्थात् अपने को उससे अभिन्न समझते हुए उपासना करे।।५४-५५।।

देहं त्यक्त्वा शिवो ग्राह्यः दिव्यतेजोविजृम्भितः।
पुरातनं गृहं त्यक्त्वा नूतनं प्राप्तवानिव।।५६।।

चिदानन्दमयं नित्यं प्राप्तवानिव भावयेत्।

जिस प्रकार पुरातन गृह को त्याग कर मनुष्य नवीन गृह को ग्रहण करता है, उसी प्रकार साधक को देह का त्याग कर शिव को ग्रहण करना चाहिये। साधक सदा ऐसी भावना करे कि मैं चिदानन्दमय और नित्य अपने स्वरूप को प्राप्त हूँ।।५६।।

यदेवं निष्कलं ज्ञानं शाश्वतं ध्रुवमव्ययम्।।५७।।

निर्विकल्पमनिर्देश्यं हेतुदृष्टान्तवर्जितम्।
अलिङ्गमक्षरं शान्तं विषयातीतगोचरम्।।५८।।

अविभाव्यमसन्देहं तदहं नात्र संशयः।
धर्मधर्मिगताभेदादित्थमुक्तं सुबुध्यताम्।।५९।।

उसे यह समझना चाहिये कि जो निष्कल, ज्ञान, शाश्वत, ध्रुव, अव्यय, निर्विकल्प, अनिर्देश्य, हेतुदृष्टान्त से रहित, अलिङ्ग, अक्षर, शान्त, विषयातीत विषय, अविभाव्य और असंदिग्ध है, वही मैं हूँ, इसमें संदेह नहीं। धर्म और धर्मी में वर्तमान अभेद के कारण ऐसा कहा गया है, इसे जानो।।५७-५९।।

निर्मनश्चिन्मनोध्यानं निर्विकल्पमितीरितम्।
यत्किञ्चित् सविकल्पं तत् सूक्ष्मयोजनभासनात्।।६०।।

मन से परे चित् से युक्त का ध्यान निर्विकल्पक कहा गया है। जो सविकल्पक होता है, वह सूक्ष्म संयोजन का आभास होने के कारण होता है।।६०।।

दासोऽहमिति सम्मोहः सोऽहमिति परिभ्रमः।
अहमेव परिभ्रान्तिस्तस्मात् त्रीणि परित्यजेत्।।६१।।

'दासोऽहम्' ऐसा ज्ञान संमोह कहलाता है, 'सोऽहम्' यह ज्ञान भ्रम है। 'अहमेव' यह ज्ञान भी भ्रम है। इसलिये तीनों का त्याग कर देना चाहिये।।६१।।

शिवोऽहमस्मि सिद्धान्तं वेदान्तं सोऽहमस्मि तु।
इत्युक्तेः सोऽहमेकत्र सर्वत्रेति न शब्दितम्।।६२।।

'शिवोऽहम्' यह भावना शैवसिद्धान्तमतानुसारिणी है। 'सोऽहमस्मि' यह वेदान्त का सिद्धान्त है। इस रूप में व्यक्त 'सोऽहम्' एक स्थान पर नहीं, सर्वत्र मिलता है।।६२।।

शिवात्मकशिवारोपात् स्वात्मा शिवस्वभावतः।
शिवोऽहमस्मि चेत्युक्तध्यानं कुर्यादनुत्तमम्।।६३।।

शिवात्मक शिव का आरोप होने के कारण आत्मा शिव स्वभाव वाला है। इसलिये साधक को 'शिवोऽहम्' यह सर्वोत्तम ध्यान करना चाहिये।।६३।।

शिवेति चिन्तनं वापि शिवयोगं प्रकीर्तितम्।
शिवस्य दर्शनं ज्ञानं योगस्तत्रैकचित्तता।।६४।।

बौद्धी च पौरुषी चिन्ता सकले निष्कले पृथक्।
शिवस्वशिवचिन्तेति द्विचिन्ता तु मुहुर्मुहुः।।६५।।

शिव का चिन्तन भी शिवयोग कहा गया है। सर्वत्र शिव का दर्शन शिवज्ञान और उस शिव का निरन्तर ध्यान शिवयोग कहलाता है। ज्ञान दो प्रकार का होता है— १. बौद्ध ज्ञान एवं २. पौरुष ज्ञान। ये दोनों

फिर सकल और निष्कल के भेद से दो-दो प्रकार के होते हैं। इसमें शिव और स्वशिव, अर्थात् जीवात्मा की चिन्ता इस प्रकार की ये दो चिन्तायें या ज्ञान बार-बार होती हैं।।६४-६५।।

ध्यानं समाधिरेकाग्रा स्तिमितोदधिनिर्मला।
ध्यानोत्कृष्टपरावस्था समाधिरिति गीयते।।६६।।

ध्यान ही प्रगाढ़ एवं निर्बाध होने पर चित्तैकाग्र्यरूप समाधि कही जाती है। यह शान्त निस्तब्ध समुद्र की भाँति निर्मल होती है। ध्यान की उत्कृष्ट परावस्था समाधि कही जाती है।।६६।।

अङ्गयोगोऽयमङ्गी द्विशिवसाक्षात्कृतिद्वयम्।
सोऽहङ्कारसुधीशैवीवृत्तिव्यक्तद्विचिन्तया।।६७।।

ध्यान आदि का अंगयोग में समावेश होता है। सविकल्पक और निर्विकल्पक के भेद से भिन्न योग आत्मशिव और परशिव का साक्षात्कार कराता है। ऐसे सुधी योगी की द्विविध चित्तवृत्ति इनका साक्षात्कार कराती है।।६७।।

प्रत्यक्पराक्द्विचिच्छक्त्या
चिन्त्यं स्वात्मशिवं शिवम्।
सकामाकामयोर्भेदात् सकलं निष्कलं तु वा।।६८।।

प्रत्यक् तथा पराक् दो प्रकार की चित् शक्ति के द्वारा स्वात्म-शिव एवं परम-शिव दोनों का चिन्तन करना चाहिये। अथवा सकाम और निष्काम चिन्तन के भेद से तथा सकल एवं निष्कल के भेद से भी दो प्रकार के ध्येय होते हैं।।६८।।

केवले कुम्भके ध्याने शून्यकुम्भसमाधिके।
यथा यथा मनो लीनं तथा स्फुरति निष्कलम्।।६९।।

केवल कुम्भक का ध्यान करने पर शून्य कुम्भक समाधि में मन जैसे-जैसे लीन होता जाता है, वैसे-वैसे निष्कल शिव का स्फुरण होने लगता है।।६९।।

शून्यान्ते कुम्भके जीवन्मुक्तिरुक्ता परापरा।
तस्यां साक्षात्कृतौ दृष्टं निष्कलं शुद्धसाक्षिकम्।।७०।।

कुम्भक जब शून्यान्त हो जाता है, अर्थात् जब कुम्भक में कोई विषय नहीं बनता, तो वह अति उत्कृष्ट जीवन्मुक्ति कही जाती है। उस मुक्ति का साक्षात्कार होने पर निष्कल शुद्ध साक्षी का दर्शन होता है।।७०।।

स्थूलसूक्ष्मातिसूक्ष्मा स्यात् साक्षात्कृतिरनिष्कला।
अथ पत्युरधिष्ठानं स्वशक्तिकिरणात्मकम्।।७१।।

तस्यां दिवि सुदीप्तात्मा निष्कम्पोऽचलमूर्तिमान्।
इति शुद्धशिवं प्रोक्तं निष्कलाद्यविशेषकम्।।७२।।

अनिष्कल, अर्थात् सकल का साक्षात्कार पहले स्थूल होता है, बाद में क्रमशः सूक्ष्म और सूक्ष्मतर होता जाता है। यह सूक्ष्मतर विषय पति, अर्थात् शिव का स्वशक्तिकिरणात्मक अधिष्ठान है। इस अधिष्ठान रूपी द्यौः, अर्थात् चिदाकाश में जो सुदीप्त निष्कम्प और अचलमूर्तिमान् तत्त्व है, वह निष्कल आदि विशेषताओं से शुद्ध शिव कहा गया है।।७१-७२।।

तस्मादेव परं तत्त्वमचलं सर्वतोमुखम्।
इत्यादिनिष्कलं प्रोक्तं मतङ्गाद्यागमे शिवम्।।७३।।

इसीलिये मतंग आदि आगमों में शिव को परम अचल सर्वतोमुख और निष्कल तत्त्व कहा गया है।।७३।।

सर्वे धर्मात्मनः सन्ति यमेव परिकल्पयेत्।
तत्तद् भवत्यसन्देहात् सदा तद्भावभावितः।।७४।।

संसार में जितने पदार्थ हैं, वे सब किसी न किसी धर्म वाले होते हैं। उनमें से साधक अपने को जिस रूप में परिकल्पित करता है, निःसन्देह सदा उस भाव से भावित होकर वही हो जाता है।।७४।।

सर्वज्ञं तु तमात्मानं परिपूर्णं सदा स्मरेत्।
सर्वज्ञः सर्वगः सूक्ष्मः सर्वेशः सर्वकृद्भवेत्।।७५।।

उस आत्मा का सर्वत्र और परिपूर्ण रूप में स्मरण करना चाहिये। ऐसा स्मरण करने वाला सर्वज्ञ सर्वव्यापी सूक्ष्म सर्वेश्वर और सर्वकर्ता हो जाता है।।७५।।

चिन्मात्रोऽहमिति ध्यातमशिवं त्वात्मतत्त्वकम्।
वेदान्ते तु प्रकृत्यूर्ध्वं समनोर्ध्वं शिवाङ्कुरम्।।७६।।

शिवतत्त्व से भिन्न आत्मतत्त्व का 'चिन्मात्रोऽहम्' के रूप में ध्यान करना चाहिये। यह तत्त्व वेदान्त में प्रकृति, अर्थात् माया से ऊपर का तत्त्व है और शैवशास्त्र में समना से, ऊर्ध्व यह शिवांकुर है।।७६।।

विषयत्यागाच्च तद्योग इति न्याय इहेष्यताम्।
भूलिङ्गं तदिदं चान्यद् द्रष्टा भोक्ताहमादिकाम्।।७७।।

"विषयों के त्याग से आत्मतत्त्व या शिवतत्त्व से योग होता है" इस सिद्धान्त को यहाँ मानना चाहिये।।७७।।

वृत्तिं कुर्वन् मनोऽहङ्कृत्सन्त्यागाच्छुद्धविद्यया।
सास्त्रया समनान्तं सन्धावद् वृत्तितत्त्वगम्।।७८।।

पाशावलोकनं त्यक्त्वा स्वरूपालोकनं हि यत्।
आत्मव्याप्तिर्भवेदेषा शिवव्याप्तिरतोऽन्यथा।।७९।।

यह भूलिंग, अर्थात् पार्थिव लिंग अन्य है। 'अहं द्रष्टा', 'अहं भोक्ता' इत्यादि वृत्ति को करने वाले अहंकार के त्याग से अस्त्रयुक्त शुद्धविद्या के द्वारा समनापर्यन्त जाने वाली वृत्ति में वर्तमान पाश को छोड़कर जो स्वरूप का साक्षात्कार है, यही आत्मव्याप्ति है। शिवव्याप्ति इससे भिन्न प्रकार की है।।७८-७९।।

शिवोऽहमस्मि धीध्यातशिवत्वेन भवेच्छिवः।
परव्याप्तिस्तयोर्मध्ये सर्वगादिगुणात्मिका।।८०।।

(स्वरूप दर्शन आत्मव्याप्ति है, किन्तु 'शिवोऽहम्' इस प्रकार की वृत्ति का बार-बार ध्यान करने से शिवत्वभाव होने के कारण साधक शिव हो जाता है। उन दोनों व्याप्तियों के मध्य 'अहं सर्वगः', 'शिवोऽहं सर्वगः' इत्यादि गुणों वाली वृत्ति परव्याप्ति कही जाती है।।८०।।

अहमेव परो देवः सर्वमन्त्रमयः शिवः।
सर्वमन्त्रव्यतीतश्च सृष्टिसंहारवर्जितः।।८१।।

मया व्याप्तमिदं सर्वं दृश्यादृश्यं चराचरम्।
अहमेव जगन्नाथो मत्तः सर्वं प्रकाशते।।८२।।

अनेकाकारसंभिन्नविश्वं भुवनसञ्चयम्।
शिवाद्यवनिपर्यन्तं तत्सर्वं मयि संस्थितम्।।८३।।

यच्च किञ्चिज्जगत्यस्मिन् दृश्यते श्रूयतेऽपि वा।
बहिरन्तर्विभागेन तत्सर्वं व्यापितं मया।।८४।।

मैं ही परदेव हूँ, मैं ही सर्वमन्त्रमय शिव हूँ, मैं समस्त मन्त्रों से परे और सृष्टि-संहार से रहित हूँ, यह दृश्यादृश्य चराचरात्मक समस्त विश्व मेरे द्वारा व्याप्त है, मैं ही संसार का एकमात्र स्वामी हूँ, सब कुछ मुझसे प्रकाशमान है, अनेक आकारों में भिन्न-भिन्न दृश्यमान यह समस्त विश्व समस्त भुवनसमूह, अर्थात् शिव से लेकर पृथिवी पर्यन्त सब कुछ मेरे ही अन्दर स्थित है, इस जगत् के अन्दर-बाहर और भीतर के विभाग से जो कुछ दिखलायी या सुनायी पड़ता है, वह सब मुझसे व्याप्त है— ऐसी धारणा या भावना या उपासना वाला साधक शिवत्व को प्राप्त करता है।।८१-८४।।

अहमात्मा शिवो ह्यन्यः परमात्मेति यः स्मृतः।
एवमुपासयेन्मोहान्न शिवत्वमवाप्नुयात्।।८५।।

मैं जीवात्मा भिन्न हूँ, परमात्मा शिव भिन्न है, जो व्यक्ति मोहवश ऐसी उपासना करता है, वह शिवत्व को नहीं प्राप्त करता।।८५।।

शिवोऽन्यस्त्वहमेवान्यः पृथग्भावं विवर्जयेत्।
यः शिवः सोऽहमेवेति अद्वैतं भावयेत् सदा।।८६।।

शिव अन्य हैं, मैं उनसे भिन्न हूँ— इस प्रकार की पृथक् भावना का त्याग करना चाहिये। जो शिव है मैं भी वहीं हूँ, इस प्रकार सदा अद्वैत-भावना करनी चाहिये।।८६।।

अद्वैतभावनायुक्तः सर्वत्रात्मनि संस्थितः (तम्)।
सर्वगं सर्वदेहस्थं पश्यते नात्र संशयः।।८७।।

जो उपासक सब स्थितियों में सर्वत्र अद्वैत भावना से युक्त होकर सर्वत्र आत्मस्वरूप में स्थित रहता है, अर्थात् अपने को स्थित देखता है,

वह अपने को सर्वव्यापी एवं सभी देहों में स्थित समझता है, इसमें सन्देह नहीं।।८७।।

एवमेकात्मभावेन संस्थितस्य तु योगिनः।
सर्वज्ञत्वं प्रवर्तेत विकल्परहितस्य च।।८८।।

इस प्रकार सर्वत्र एकात्मभाव में स्थित योगी विकल्परहित हो जाता है और इसके परिणामस्वरूप सर्वज्ञ हो जाता है।।८८।।

भूतादिमन्त्रपर्यन्तपञ्चात्मोपाधिमोक्षतः।
एकात्मेति परश्चेति शिवश्चेति त्रिधैक्यतः।।८९।।

सत्स्वात्मशिवतादात्म्यभावनं पारमार्थिकम्।
एवमेकात्मभावेन न शिवादिचिदैक्यतः।।९०।।

शिवात्मान्तरतादात्म्यं नात्मनः पारमार्थिकम्।
एकजातिदृशा सत्यं न सत्यं व्यक्तिदृग्दृशा।।९१।।

भूतादि से लेकर मन्त्र (=भूतात्मा, अन्तरात्मा, तत्त्वात्मा, जीवात्मा और मन्त्रात्मा) तक की पाँच उपाधियों से रहित होकर एकात्मा, परमात्मा और शिव — इन तीनों के ऐक्य से आत्मा और शिव की तादात्म्यभावना ही परम पुरुषार्थ है, शिव आदि के साथ चित् की एकता परमार्थ नहीं है। शिवात्मा और जीवात्मा का आन्तरिक तादात्म्य परमार्थ नहीं है। उपर्युक्त दोनों को एक जातिवाला देखना परमार्थ है, भिन्न-भिन्न व्यक्ति के रूप में देखना परमार्थ नहीं है।।८९-९१।।

अलीकं शिवतादात्म्यभावनं च फलप्रदम्।
यथा तु गारुडं वेदतात्पर्येऽपि गुरूदितम्।।९२।।

व्यक्तिगतरूप से शिव के साथ तादात्म्य दर्शन मिथ्या फल देता है, अर्थात् शिवत्वलाभ नहीं कराता। यह उसी प्रकार है, जैसे कि वेदतात्पर्य में गारुडविद्या को भी वेद का तात्पर्य माना है।।९२।।

एवमेकात्मभावेनेत्यत्र वापि प्रयुज्यताम्।
शिववच्छाश्वतः शुद्ध इत्यादिकबहुश्रुतेः।।९३।।

'एकात्मभावेन' इसका भी तात्पर्य यही समझना चाहिये। जीव 'शिव के समान सदा शुद्ध है' इत्यादि अनेक श्रुतिवाक्य भी यही कहते हैं कि जीव शिव ही है, अन्य नहीं।।९३।।

स्वशिवत्वं फलं तेन न शिवात्मशिवैक्यकम्।
शिवानन्दमनुप्राप्य शिवैकरसतां व्रजेत्।।९४।।

इत्यादिका श्रुतिस्तुल्यस्वशिवानन्दवाचिका।

इसलिये शिवोपासना का फल अपने को शिव समझना है, न कि शिव के साथ अपना तादात्म्य अथवा ऐक्य। "उपासक शैव आनन्द को प्राप्त कर शिव के साथ नीरक्षीरवत् समरस हो जाता है" इत्यादि श्रुतियाँ स्व अर्थात् जीव एवं शिव के तुल्य आनन्द की वाचिका हैं, अर्थात् दोनों एकरूप आनन्दवाले हो जाते हैं।।९४।।

द्राविडेऽपि क्वचिन्मुक्तिः शिवैक्यान्नहि वास्तवी।।९५।।

वेदान्तवत्तु सिद्धान्ते शुद्धाद्वैतं तदुच्यते।
साम्यं शिवेन तादात्म्यं शुद्धात्मस्वशिवत्वयोः।।९६।।

द्राविड़ तन्त्र के अनुसार भी शिवैक्य से किञ्चित्कालिक मुक्ति मिलती है, शाश्वती नहीं। शैवसिद्धान्त मत में भी वेदान्त की भाँति जीवशिवैक्य शुद्धाद्वैत कहा जाता है। शुद्ध स्व एवं शुद्ध शिव का तादात्म्य का तात्पर्य है जीव का शिव के साथ साम्य।।९५-९६।।

शुद्धाद्वैतं सुसायुज्यं शुद्धसिद्धान्तमद्भुतम्।
कामिकादिप्रसिद्धं च शिवस्यान्तप्रबोधितम्।।९७।।

शिवत्वव्यक्तिसंपूर्णं शिवानन्दमनिन्दितम्।
सशिवसमवादोऽयं साम्यादिति मनो यदि।।९८।।

तच्छिवसमवादे तु प्रोक्ता मुक्तिर्विचारिता।
सदाशिवसमत्वेन साकल्यादपरा मता।।९९।।

शुद्धाद्वैतवाद शिव के साथ जीव का सुसायुज्य मानता है। यह अद्भुत शुद्धसिद्धान्त कामिक आदि आगमों में प्रसिद्ध है तथा शिव के अन्त अर्थात् शैवसिद्धान्त के द्वारा प्रबोधित है। यह शिवत्व की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति है,

अनिन्दित अर्थात् निर्मल शिवानन्द है, यह शिव के साथ साम्य का वाद अर्थात् सिद्धान्त है। शिव के समवाद में यह मुक्ति कही गयी है। सदाशिव की सम्पूर्ण समता को प्राप्त करना एक अन्य प्रकार की निम्न मुक्ति मानी गयी है।।९७-९९।।

योऽसौ सर्वेषु शास्त्रेषु पठ्यते ह्यज ईश्वरः।
अकायो निर्गुणो ह्यात्मा सोऽहमिति न संशयः।।१००।।

अविज्ञातः पशुः सो हि सृष्टिधर्मसमाश्रितः।
विज्ञातः शाश्वतः शुद्धः स शिवो नात्र संशयः।।१०१।।

समस्त शास्त्रों में जिस अजन्मा ईश्वर की चर्चा की गयी है, वह अकाय निर्गुण आत्मा 'सोऽहम्' ज्ञान का विषय है। निःसन्देह वह अज्ञानी पशु है और सृष्टि के धर्म का अश्रयण करने वाला है। जब वह अपने स्वरूप का ज्ञाता हो जाता है, तो वही शाश्वत शुद्ध शिव हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं।।१००-१०१।।

न चैवाभ्यन्तरे बाह्ये नातिदूरे समीपतः।
स निष्कले परे स्थाने तत्र चित्तं निवेशयेत्।।१०२।।

वह न अन्दर है न बाहर, न अत्यन्त दूर है न अत्यन्त समीप[1]। वह निष्कल पर स्थान में स्थित है। उसमें चित्त को लगाना चाहिये।।१०२।।

तिर्यगूर्ध्वमधश्चैव बहिरन्तश्च नित्यशः।
सर्वशून्यं तमाभासमात्मानं भावयेत् सदा।।१०३।।

वह तिर्यक्, ऊर्ध्व और अधः है; वह नित्य बाहर और भीतर है। उस आत्मा की सर्वशून्य और सर्वत्र आभासमान के रूप में भावना करनी चाहिये।।१०३।।

सर्वदिग्देशकालेषु योगाभ्यासो विधीयते।
सर्ववर्णाश्रमाणां च ज्ञानभेदो न विद्यते।।१०४।।

---

१. तुलनीय— तदेजति तन्नैजति तद् दूरे तद्वन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्य बाह्यतः।। (ई.उ.५)

समस्त दिशाओं में देश-काल में योग के अभ्यास का विधान किया गया है। समस्त वर्णों आश्रमों में रहने वालों के विषय में ज्ञानभेद का विधान नहीं है, अर्थात् अमुक वर्ण में यह ज्ञान होगा, अमुक में नहीं, अमुक वर्ण को उत्कृष्ट ज्ञान होगा, अमुक को अपकृष्ट, ऐसा कोई भेद नहीं है।।१०४।।

[१]गवामनेकवर्णानां क्षीरस्याप्येकवर्णता।
क्षीरवत् पश्यते ज्ञानं लिङ्गिनश्च गवां समाः।।१०५।।

अनेक वर्ण की गायों का दूध एक वर्ण (श्वेत) होता है। इसी प्रकार ज्ञान सबको एकरूप का होता है या दिखलायी पड़ता है। लिङ्गी लोग अर्थात् नाना मत-मतान्तर को मानने वाले गायों के समान होते हैं।।१०५।।

यस्मात् सर्वगतं ब्रह्म व्यापकं सर्वतोमुखम्।
तस्माद् ब्रह्मणि संस्थाप्य दिग्देशान् न विचारयेत्।।१०६।।

चूँकि ब्रह्म सर्वव्यापी सर्वगत और सर्वतोमुख है, इसलिये ब्रह्म में स्थित होने के बाद दिग्-देश-काल-पात्र आदि का विचार नहीं करना चाहिये।।१०६।।

तदुपलक्षितान् कालानर्थानपि च न स्मरेत्।
नागतोऽहं गतो वापि नागमिष्ये न गन्तृता।।१०७।।

न भूतो न भविष्यामि प्रकृत्यस्थिरधर्मिणी।
गच्छंस्तिष्ठन् स्वपन् जाग्रद् भुञ्जानोऽपि पिबन्नपि।।१०८।।

सर्वदा सर्वकालेषु वातशीतातपेषु च।
भयदारिद्र्यरोगेषु मान्द्यविज्वरकादिषु।।१०९।।

आत्मन्येव स्थितः शान्त आत्मतृप्तस्तु निष्कलः।
शिवज्ञानामृतं पीत्वा विचरस्व यथासुखम्।।११०।।

शिववच्छाश्वतः शुद्धः सृष्टिधर्मविवर्जितः।
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं त्रिसत्यं समयः कृतः।।१११।।

---

१. तुलनीय— गवामनेकवर्णानां क्षीरस्याप्येकवर्णता।
क्षीरवत् पश्यते ज्ञानं लिङ्गिनस्तु गवां यथा।। (ब्र.बि.उ.१९)

उस दिग्-देश से उपलक्षित कालों और अर्थों का भी स्मरण नहीं करना चाहिये। मैं न तो कहीं से आया और न कहीं गया, न आऊँगा और न जाऊँगा। न उत्पन्न हुआ, न उत्पन्न होऊँगा। आना-जाना, उत्पन्न होना, नष्ट होना यह सब अस्थिर धर्मवाली प्रकृति है। जाते-खड़े होते, सोते-जागते, खाते-पीते सब समय सर्वदा, वायु शीत धूप में, भय दारिद्र्य रोग में, अग्निमान्द्य, विषम ज्वर आदि में सर्वत्र आत्मतत्त्व में स्थित, शान्त, आत्मतृप्त, निष्कल होते हुए शिवज्ञानरूपी अमृत का पान कर संसार में शिव के समान शाश्वत, शुद्ध तथा सृष्टि के धर्म (=जन्म वृद्धि क्षय आदि) से रहित होकर, सुखपूर्वक विचरण करना चाहिये। यह सत्य है, सत्य है, सत्य है— इस प्रकार तीन बार सत्य कह कर प्रतिज्ञा की गयी है।।१०७-१११।।

अतः परतरं नास्ति विज्ञेयं कुत्रचिद् गुह!।
परात्परतरं वक्ष्ये मन्त्रातीतं निरञ्जनम्।।११२।।

निरामयं निराधारं वर्णरूपविवर्जितम्।
सर्वज्ञः सर्वगः शान्तः सर्वात्मा सर्वतोमुखः।।११३।।

अतीन्द्रियो निरालम्बः सुसूक्ष्मः शाश्वतोऽव्ययः।
सुनिष्कलो निरालम्बोऽनाख्येयो व्यापको ध्रुवः।।११४।।

निरौपम्योऽप्रमेयश्च परमात्मा प्रकीर्तितः।
परस्मिन् तेजसि व्यक्ते तत्रस्थः शिवतां व्रजेत्।।११५।।

हे गुह! इससे बढ़ कर कहीं भी कोई तत्त्व विज्ञेय नहीं है। अब मैं परात्पर तत्त्व को बतलाऊँगा। वह तत्त्व मन्त्र से परे, निरञ्जन, निरामय, निराधार, रूप-रंग से रहित, सर्वज्ञ, सर्वत्रगामी, शान्त, सर्वात्मा, सर्वतोमुख, अतीन्द्रिय, निरालम्ब, अत्यन्त सूक्ष्म, शाश्वत, अव्यय, निष्कल, निरालम्ब, अनाख्येय, व्यापक, ध्रुव, अनुपमेय, अप्रमेय और परमात्मा कहा गया है। उपासक उस परतेज के व्यक्त होने पर उसमें स्थित होकर शिवत्व को प्राप्त करता है।।११२-११५।।

परोक्षं स्वशिवज्ञानमपरोक्षमुपास्यताम्।
निरामयं निराधारं वर्णरूपविवर्जितम्।।११६।।

निरञ्जनं गुणातीतमात्मानं पर्युपासयेत्।
निराश्रयं निरालम्बमप्रमेयमनौपमम्।।११७।।
स्वभावविमलं नित्यमात्मानं पर्युपासयेत्।

अपने को शिव समझना, यह ज्ञान परोक्ष है, (क्योंकि इसके ऊपर अन्तःकरण की परिणाम रूप वृत्ति का आवरण है)। इसलिये प्रयत्न कर अपरोक्ष ज्ञान की उपासना करनी चाहिये। आत्मतत्त्व की उपासना उसे निरामय, निराधार, रंगरूप से रहित, निरंजन एवं गुणातीत के रूप में करनी चाहिये। वह आत्मा निराश्रय, निरालम्ब, अप्रमेय, अनुपम, स्वभावतः निर्मल और नित्य है, ऐसी उपासना करनी चाहिये।।११६-११७।।

संन्यस्य सर्वकर्माणि निस्पृहः सङ्गवर्जितः।।११८।।

भावयेदात्मनात्मानमात्मन्येवात्मनः स्थितिः।
चिच्छक्त्यां दिवि मुक्तस्य शिवस्येव मता स्थितिः।।११९।।

(विहित-अविहित, नित्य-नैमित्तिक-काम्य) समस्त कर्मों का न्यास कर, निःस्पृह रहना चाहिये। आत्मा में ही अपनी स्थिति रखनी चाहिये। चित् शक्ति रूपी अन्तरिक्ष में शिव के समान मुक्त व्यक्ति की स्थिति मानी गयी है।।११८-११९।।

न चास्याविदितं किञ्चिन्न चादृष्टं न चाश्रुतम्।
सर्वज्ञः सर्वकृद् भूयात् सर्वगः स शिवप्रभुः।।१२०।।

इस प्रकार के शिवोपासक के लिये कुछ भी अविदित अदृष्ट और अश्रुत नहीं रहता। वह सर्वज्ञ सर्वकर्ता सर्वगामी और शिव के समान सबका प्रभु हो जाता है।।१२०।।

आत्मलाभात् परो लाभः क्वचिदन्यो न विद्यते।
तदात्मानमुपासीत योऽयमात्मा परस्तु सः।।१२१।।

आत्मलाभ से बढ़कर कहीं कोई लाभ नहीं है। इसलिये आत्मा की शिव के रूप में उपासना करनी चाहिये। जो यह आत्मा है, वही परतत्त्व अर्थात् परमशिव है।।१२१।।

इत्येवमधिकारेण सर्वज्ञेनाधिकारिणा।
सर्वबन्धाद् विनिर्मुक्तः सर्वज्ञः सर्वगो भवेत्।।१२२।।

इस प्रकार सर्वज्ञ अधिकारी अधिकारपूर्वक उपासना करने से समस्त बन्धनों से पूर्णतया मुक्त होकर सर्वज्ञ और सर्वगामी हो जाता है।।१२२।।

सर्वे विनाशका भावा मत्त एव पृथग्विधाः।
भावाभावविनिर्मुक्त अहमेव शिवोऽव्ययः।।१२३।।

अस्मिताकलया युक्तं चैतन्यं सकलं स्मृतम्।
अस्मितारहितं चैतच्चैतन्यं शक्तिरुच्यते।।१२४।।

'संसार में अभाव से परे मैं ही अव्यय शिव तत्त्व हूँ।' इस प्रकार की अस्मिता कला से युक्त चैतन्य 'सकल' कहलाता है। यही चैतन्य जब अस्मिता से रहित हो जाता है, तब शक्ति कहा जाता है।।१२३-१२४।।

तया प्रकाशितं विश्वं शक्तिध्यानमुदाहृतम्।
सर्वालम्बननिर्मुक्तं निष्कलं ज्ञानमुच्यते।।१२५।।

यह विश्व उस शक्ति से प्रकाशित है, ऐसी भावना करना शक्ति का ध्यान कहा जाता है। (वही सकल ध्यान है)। समस्त आलम्बन से रहित ध्यान निष्कल ज्ञान कहा जाता है।।१२५।।

अहमंशेन यच्छून्यं चिन्मात्रालोकमद्वयम्।
मुक्तिबीजं तदाख्यातं परयोगप्रवर्तकम्।।१२६।।

जो ज्ञान 'अहम्' अंश से शून्य, चिन्मात्रालोकवाला तथा अद्वय है, परयोग का प्रवर्तक वह ज्ञान मुक्ति का बीज कहा गया है।।१२६।।

आत्मा परः शिवश्चेति त्रिपदार्थास्त्रिचेतनाः।
त्रिशून्योदयसंभिन्नास्त्वन्तदस्ये(सी)ति सम्भवाः।।१२७।।

आत्मा, पर और शिव ये तीन पदार्थ तीन चैतन्य वाले हैं। ये तीन शून्य के उदय से संभिन्न 'त्वम्' 'तत्' और 'असि' से उत्पन्न हैं।।१२७।।

इति त्रिपदलक्ष्यार्थाश्चिन्मात्रपरमुक्तिषु।
त्रिस्वनामत्रिकव्याप्तियुक्ता आत्मा परः शिवः।।१२८।।

ये तीन पद— आत्मा, पर एवं शिव, अर्थात् ज्ञानमात्र की अवस्था, परम अवस्था और मुक्ति की अवस्था — ये तीन अपने नाम की व्याप्ति से युक्त हैं। आत्मा परमशिव है॥१२८॥

चिन्मात्रः सर्वगः सर्वज्ञतादिगुणकः क्रमात्।
आत्मानन्दः परानन्दः शिवानन्दस्त्रिषु क्रमात्॥१२९॥

यह आत्मा चिन्मात्र, सर्वत्र व्याप्त और क्रमशः सर्वज्ञता[1] आदि गुणों वाला है। तीनों में क्रम से आत्मानन्द, परानन्द और शिवानन्द की स्थिति होती है॥१२९॥

ध्यानं शिवोऽहमस्मीति शिवायेति तदर्थतः।
शिवेति स्वशिवस्फूर्त्या शिवचिन्तनमेव च॥१३०॥

केवलकुम्भके ध्यानं समाधिः शून्यकुम्भके।
शून्यान्तकुम्भके साक्षात्कारः प्रोक्तः शिवागमे॥१३१॥

'शिवोऽहमस्मि' यह ध्यान तदर्थ, अर्थात् शिव के लिये है। 'शिव' इस प्रकार की आत्मसम्बन्धी शिवस्फूर्ति के द्वारा शिव का चिन्तन केवल कुम्भक प्राणायाम में किया जाय तो ध्यान, शून्यकुम्भक में किया जाय तो समाधि तथा शून्यान्तकुम्भक में किया जाय, तो शैवागम में यह साक्षात्कार कहा गया है॥१३०-१३१॥

शाम्भवी खेचरी मुद्रा समग्रसमनाग्रिमा।
चिन्मुद्रा मौनमुद्रा च मौनान्ता मुद्रिकाः क्रमात्॥१३२॥

शाम्भवी और खेचरी मुद्रायें समना स्थिति की पूर्ववर्तिनी होती हैं। चिन्मुद्रा, मौनमुद्रा और मौनान्ता मुद्रायें भी समना स्थिति की पूर्ववर्तिनी हैं॥१३२॥

शिवोऽहमस्मि लक्ष्यार्थाः परात्मस्वशिवात्मनः।
विद्यात्मशिवतत्त्वानि वाच्यार्थास्तदुपाधयः॥१३३॥

---

१. सर्वज्ञता तृप्तिरनादिबोधः स्वतन्त्रता नित्यमलुप्तशक्तिः।
अनन्तशक्तिश्च विभोर्विधिज्ञाः षडाहुरङ्गानि महेश्वरस्य॥ (वायुपुराण)

परात्मा, स्वात्मा और शिवात्मा पदों का लक्ष्यार्थ 'शिवोऽहमस्मि' भाव है। उसकी उपाधियाँ उनके वाच्यार्थ हैं॥१३३॥

प्रत्याहारोऽन्तरौन्मुख्यं बाह्यनिवृति जाग्रकम्।
धारणा समनाग्रस्था स्वप्नः स्यात् स्वात्मनिष्ठता।।१३४।।

बाह्य विषयों से निवृत्ति जाग्रत् अवस्था और अन्दर की ओर उन्मुखता प्रत्याहार है। समना धारणा है। स्वात्मनिष्ठ होना स्वप्न है॥१३४॥

उन्मन्यां ध्यानसुप्तिः स्यादन्ते तुर्यं समाधिकम्।
साक्षात्कारोऽतितुर्यं स्यादुदग्रं तदुदीरितम्।।
ध्यानादित्रयसंबन्धाच्चिन्मात्रात्मा परः शिवः।।१३५।।

उन्मनी अवस्था ध्यान एवं सुषुप्ति है। उन्मनी अवस्था का अन्त तुरीय अवस्था या समाधि है। स्वात्मा या शिव का साक्षात्कार तुरीयातीत अवस्था है, जिसे उदग्र कहा गया है। ध्यान आदि तीन के सम्बन्ध से यह जीव चिन्मात्र परशिव हो जाता है॥१३५॥

चैतन्यं दृक्क्रियारूपं तदस्त्यात्मनि सर्वदा।
सर्वतश्च यतो मुक्तौ श्रूयते सर्वतोमुखम्।।१३६।।

चैतन्य ज्ञानक्रिया रूप है और आत्मा में सर्वदा रहता है। चूँकि यह आत्मा सब प्रकार से मुक्त है, इसलिये इसे सर्वतोमुख कहा जाता है॥१३६॥

चिद्रूपमात्मनो रूपं दृक्क्रियागुणलक्षितम्।
ज्ञानरूपस्य तस्यापि स्वरूपं दृक्क्रियात्मकम्।।१३७।।

चैतन्य स्वरूप होना आत्मा का स्वभाव है और यह ज्ञानक्रिया गुणवाला है। ज्ञानरूप उसका स्वरूप ज्ञानक्रियात्मक है॥१३७॥

हृत्सरोजे ह्यहंरूपा या चितिर्निष्कलाऽचला।
अहङ्कारपरित्यागात् सा चितिर्मोक्षदायिनी।।१३८।।

हृदयकमल में जो अहंरूपा निष्कल अचल चिति है, उसमें से अहङ्कार को हटा देने से जो केवल चिति बचती है, वह मोक्षदायिनी होती है॥१३८॥

एकान्तकुम्भकस्यान्तरोंहौमुद्धृतिलिङ्गिनः।
क्षुरिकास्त्राङ्गमूलस्य शुद्धविद्यात्मनः स्मृतेः।।१३९।।
निर्मनोनिरहङ्काराद् यावत्तत्त्वं शिवाह्वयम्।
सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं चिद्रूपं यन्निरन्तरम्।।१४०।।
तच्छिवोऽहमिति ध्यात्वा सर्वासक्तिं विवर्जयेत्।

एकान्त कुम्भक के अन्दर 'ओं हौं' ऐसी उद्भावना वाले लिङ्गी, क्षुरिका अस्त्र, अंगमूल एवं शुद्धविद्या वाले की स्मृति जब मन एवं अहंकार से रहित होकर सम्पूर्ण तत्त्व को शिवात्मक, सर्वोपाधि से रहित एवं निरन्तर चिद्रूप समझती है, वही शिवात्मक ज्ञान है। 'मैं वह शिव हूँ' ऐसा ध्यान कर ध्याता सम्पूर्ण आसक्ति को छोड़ देता है।।१३९-१४०।।

देशजात्यादिसंबन्धान् वर्णाश्रमसमन्वितान्।।१४१।।
भावानेतान् परित्यज्य स्वभावं भावयेद् बुधः।

देश-जाति आदि सम्बन्धों, वर्ण-आश्रम आदि व्यवस्थाओं के भावों को छोड़कर विद्वान् को स्वभाव की भावना करनी चाहिये।।१४१।।

अहमेको न मे कश्चिन्नाहमन्यस्य कस्यचित्।।१४२।।
न तं पश्यामि यस्याहं तन्न पश्यामि यो मम।
नास्ति स्वस्वामिसंबन्धः शिवतुल्यगुणस्मृतेः।।१४३।।

'मैं अकेला हूँ', 'कोई भी मेरा नहीं है', 'मैं अन्य किसी का नहीं हूँ', मैं ऐसे किसी को भी नहीं देख रहा हूँ' जिसका मैं हूँ, अथवा जो मेरा हो', जीव शिवतुल्य गुणवाला है। ऐसी स्मृति से (मेरे और अन्य के अथवा मेरे और शिव के बीच) स्वस्वामिभाव रूप सम्बन्ध नहीं है।।१४२-१४३।।

सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम्।
वश्योऽनावृतवीर्यस्य स्वत एव विमोक्षणात्।।१४४।।

दूसरे के अधीन रहना सम्पूर्ण दुःख है। अपने अधीन रहना सम्पूर्ण सुख है। अनावृत, अर्थात् सम्पूर्ण पराक्रम वाला किसी के वश में नहीं रहता, क्योंकि वह स्वयं मुक्त है।।१४४।।

अहमेव परब्रह्म जगन्नाथोऽहमीश्वरः।
इति स्यान्निश्चितो मुक्तो बद्धः स्यादन्यथा पुमान्।।१४५।।

'मैं ही परब्रह्म हूँ', 'जगन्नाथ हूँ', 'मैं ही ईश्वर हूँ' — ऐसे निश्चय वाला मुक्त होजाता है। इससे अन्य प्रकार की धारणा वाला पुरुष बद्ध होता है।।१४५।।

शिवमेव स्वयं भाव्य स्वयमेव शि(वं?वो) भवेत्।
समरसीभावयोगेन तत्समाधिरिहोच्यते।।१४६।।

स्वयं की शिव के रूप में भावना कर स्वयं शिव हो जाना चाहिये। शिव के साथ समरस होना ही शैवागम में समाधि कही जाती है।।१४६।।

ऐकान्तिकं सुखं यत्र तथैवात्यन्तिकं भवेत्।
निष्कर्मणि परे तत्त्वे को न रज्येत पण्डितः।।१४७।।

जहाँ ऐकान्तिक (=सम्पूर्ण) सुख है, वही आत्यन्तिक (अनश्वर) सुख भी है। (इस प्रकार का उभयविध सुख कर्म से अप्राप्य परतत्त्व में है) ऐसे परतत्त्व में कौन पण्डित आसक्त नहीं होगा।।१४७।।

निवृत्तो विषयज्ञानान्निष्कलध्यानतत्परः।
अनिच्छन्नपि मेधावी लभते मोक्षमक्षयम्।।१४८।।

विषयों के ज्ञान से निवृत्त, निष्कल ध्यान में तत्पर मेधावी इच्छा न करता हुआ भी अक्षय मोक्ष को प्राप्त करता है।।१४८।।

ज्ञानामृतरसो येन सकृदास्वादितो भवेत्।
स सर्वकार्याण्युत्सृज्य तत्रैव परिधावति।।१४९।।

जिसने एक बार शिवज्ञान रूपी अमृत रस का आस्वादन कर लिया है, वह सांसारिक जीव सारे कार्यों को छोड़कर उसी दिशा में दौड़ता है।।१४९।।

गोदोहमिषुपातं वा नयनोन्मेषमात्रकम्।
सकृत् परपदे युक्तो मुक्तः शिवसमः स्मृतः।।१५०।।

गोदोह (गाय के दुहने), इषुपात (बाण के लक्ष्य तक पहुँचने अथवा नेत्र के उन्मेषमात्र काल के लिये भी यदि साधक एक बार

परमपद से संयुक्त हो जाता है, तो वह मुक्त होकर शिव के समान हो जाता है॥१५०॥

निरस्य वासनाः सर्वा मनोवृत्तिं विवर्जयेत्।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत्॥१५१॥

समस्त वासनाओं का त्याग कर मन की जिस वृत्ति में ये वासनायें रहती हैं, उस वृत्ति को भी छोड़ देना चाहिये[1]। मन को आत्मकेन्द्रित कर किसी का भी ध्यान नहीं करना चाहिये॥१५१॥

आत्ममध्ये शिवं कुर्याच्छिवमध्ये तमात्मकम्।
साक्षाच्छिवम(हं?यो) भूत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत्॥१५२॥

आत्मा के मध्य में शिव को और शिव के मध्य में आत्मा को रखना चाहिये। इस प्रकार साक्षात् शिवमय होकर फिर किसी का भी चिन्तन नहीं करना चाहिये॥१५२॥

एवमातिष्ठतस्तस्य विनैवाकरकल्पनाम्।
अकिञ्चिच्चिन्तकस्यास्य रूपमुन्मीलितं स्वकम्॥१५३॥

इस प्रकार से वर्तमान में रहने वाले पुरुष का बिना शास्त्रों के अध्ययन के किञ्चित् चिन्तन न करने वाले को अपने स्वरूप का साक्षात्कार हो जाता है॥१५३॥

सर्वार्थदृक्क्रियारूपमानन्दमयमव्ययम्।
सर्वार्थभासकं ज्ञानं शिवयोगं तु शाश्वतम्॥१५४॥

जो ज्ञान सर्वार्थदृक्क्रियारूप है, आनन्दमय, अव्यय है, सर्वार्थभासक है, वह ज्ञान शाश्वत शिवयोग है॥१५४॥

प्रकाशयति मुक्त्यर्थं मुमुक्षूणामयं शिवः।
मुक्तिशब्दोदिता मुक्तिः सर्वथा व्यक्तिरेव च॥१५५॥

---

१. तुलनीय— त्यज धर्ममधर्मं च उभे सत्यानृते त्यज।
उभे सत्यानृते त्यक्त्वा येन त्यजसि तत् त्यज॥

यह शिव मोक्षार्थियों की मुक्ति के लिये इस ज्ञान को प्रकाशित करते हैं। 'मुक्ति' शब्द से कही गयी मुक्ति सर्वथा अपने स्वरूप की अभिव्यक्ति है।।१५५।।

शिवार्कशक्तिदीधित्या समर्थीकृतचिद्दृशा।
शिवं शक्त्यादिभिः सार्धं पश्यत्यात्मा गतावृतिः।।१५६।।

यह आत्मा शिवरूपी सूर्य की शक्तिरूपी किरणों के द्वारा समर्थ बनाये गये ज्ञानरूपी नेत्रों से अज्ञानावरण रहित होकर शक्ति आदि के साथ शिव का साक्षात्कार करता है।।१५६।।

अप्राकृतेन नित्येन निर्मलेनाविकारिणा।
व्यापकेनातिसूक्ष्मेण परेण योगचक्षुषा।।१५७।।

द्विशिवग्राहिचिच्छक्तियुग्मप्रत्यक्षवर्त्मना।
विशुद्धं शाश्वतं नित्यमप्रमेयमनौपमम्।।१५८।।

निर्विकल्पमचिन्त्यं च हेतुदृष्टान्तवर्जितम्।
सुतृप्तं निर्गुणं शान्तं तत्त्वातीतं निरञ्जनम्।।१५९।।

अविभाव्यमसन्देहं पश्यन्नीशानमात्मनि।
सर्वगं सर्वदेहस्थं व्यापकं सर्वतोमुखम्।।१६०।।

योगी अप्राकृत नित्य निर्मल निर्विकार व्यापक अत्यन्त सूक्ष्म पर योगचक्षु के द्वारा दो शिव के ग्राही चित् शक्ति के दो प्रत्यक्ष मार्ग के द्वारा, विशुद्ध शाश्वत नित्य अप्रमेय अतुल्य निर्विकल्प अचिन्त्य हेतुदृष्टान्तरहित, सुतृप्त निर्गुण शान्त तत्त्वातीत निरञ्जन अविभाव्य असन्दिग्ध शिव को अपने अन्दर देखता है। इसके फलस्वरूप वह अपने को सर्वगामी सर्व-देहस्थ व्यापक सर्वतोमुख निरामय निराधार शिवस्वरूप देखता है।।१५७-१६०।।

निरामयं निराधारमात्मानं पश्यते शिवम्।
विभिन्नं प्रक्रियामार्गं मन्त्रतन्त्रं परापरम्।।१६१।।

मूर्तामूर्तं जगत्कृत्स्नं पश्यत्यात्मन्युपस्थितम्।
सर्वज्ञः सर्वदर्शी च परिपूर्णः सुनिर्मलः।।१६२।।

विमुक्तः केवलीभूतः सुखमक्षयमाप्नुयात्।
निस्तत्त्वे निष्कलीभूते विन्दत्यात्मनि यत्सुखम्।।१६३।।

निर्विकल्पमचिन्त्यं च हेतुदृष्टान्तवर्जितम्।
तत्सुखं परमं प्रोक्तमात्यन्तिकमनौपमम्।।१६४।।

वह अपने को निरामय निराधार शिवस्वरूप समझता है। अपने अन्दर विभिन्न प्रक्रिया मार्ग से योगी सर्वज्ञ सर्वदर्शी परिपूर्ण सुनिर्मल विमुक्त और केवली होकर अक्षय सुख को प्राप्त करता है। आत्मा के निस्तत्त्व और निष्कल होने पर साधक जिस सुख को प्राप्त करता है, वह परम आत्यन्तिक, अर्थात् कभी नष्ट न होने वाला तथा अतुलनीय होता है।।१६१-१६४।।

निरस्य विषयासङ्गं मनोवृत्तिं विवर्जयेत्।
यदा यात्युन्मनीभावं तदा तत्परमं सुखम्।।१६५।।

सद्भोगं वाङ्मनोऽतीतं स्वयमेवानुभूतिमान्।
तदेव शिवभोगश्च तदेव परमं सुखम्।।१६६।।

विषयों के प्रति आसक्ति को छोड़कर मन की वृत्ति का त्याग कर देना चाहिये। ऐसा होने के बाद साधक जब समना से ऊपर के स्तर उन्मना में पहुँचता है, तब वह उस परम सुख को प्राप्त होता है। वह वाणी और मन से परे सद्भोग का स्वयं अनुभव करता है। यही भोग शिवभोग है और यही परम सुख है।।१६५-१६६।।

ज्ञानामृतसुतृप्तस्य कृतकृत्यस्य योगिनः।
नैवास्ति किञ्चित् कर्तव्यमस्ति चेन्न स तत्त्ववित्।।१६७।।

ज्ञान के अमृत से पूर्णरूपेण तृप्त योगी के लिये इस संसार में कुछ भी करणीय नहीं रहता। यदि कुछ करणीय शेष बचता है, तो फिर वह योगी नहीं है।।१६७।।

पशुभावाद्यदातीत्य पतिभावेन तिष्ठति।
तत्तस्य गमनं नाम सर्वगे गमनं कुतः।।१६८।।

योगी पशुभाव आदि को पारकर जब पतिभाव में रहने लगता है, तो वहीं उसका गमन है। अन्यथा जब वह योगप्रभाव से सर्वगामी हो गया, तो फिर उसका एक स्थान से दूसरे स्थान में गमन कैसा?॥१६८॥

उन्मनत्वं शिवत्वं च प्रयातीत्युपचर्यते।
संबोधो गमनं नाम सर्वगे गमनं कुतः॥१६९॥

योगी उन्मनीभाव और शिवभाव को प्राप्त होता है— यह कथन लाक्षणिक है। उसका शिवतत्त्व का सम्यक् बोध ही गमन है, क्योंकि सर्वव्यापी के विषय में गमन की चर्चा कैसे हो सकती है?॥१६९॥

स्वान्यप्रकाशविज्ञप्तिः सच्चिदानन्दलक्षणः।
प्रभुः सर्वत्र चेता च व्यापी सूक्ष्मः शिवोऽव्ययः॥१७०॥

सर्वज्ञः स शिवो यद्वत् किञ्चिज्ज्ञत्वविवर्जितः।
शिवत्वव्यक्तिसंपूर्णः संसारी न भवेत् पुनः॥१७१॥

अपने तथा अन्य के प्रकाश के ज्ञान से युक्त वह शिव सत्-चित्-आनन्द स्वरूप, सर्वत्र प्रभु, चेतनयुक्त, व्यापक सूक्ष्म और अव्यय है। जिस प्रकार शिव किञ्चिज्ज्ञत्व रहित होता हुआ सर्वज्ञ है। योगी शिवत्व के साक्षात्कार से पूर्ण होकर पुनः संसारी नहीं होता॥१७०-१७१॥

गलिते सर्वथा बन्धे विमुक्ते चाणवे मले।
सर्वार्थद्योतिका शक्तिः शिवस्येव विजृम्भते॥१७२॥

ततो विमुक्ताः सर्वज्ञा न तु चिन्मात्रवेदिनः।
ब्रह्मादिस्थावरान्तस्य भूतवर्गस्य कृत्स्नशः॥१७३॥

निरपेक्ष्य करोत्याशु अणोरात्मसमं बलम्।
शिवत्वोद्रेकदृष्ट्या तु कुर्यादिति श्रुतेर्बलात्॥१७४॥

योगी का बन्धन जब पूर्णरूपेण विगलित हो जाता है तथा वह आणव मल से मुक्त हो जाता है, तब उसके अन्दर शिव के समान सर्वार्थद्योतिका शक्ति स्फुरित होने लगती है। उक्त शक्ति के उद्दीप्त होने के बाद सर्वज्ञ मुक्त हो जाते हैं। केवल वह योगी चिति शक्ति के सम्पन्न जीव का ही नहीं, ब्रह्मा से लेकर स्थावर पर्यन्त समस्त भूतवर्ग की

अपेक्षा के बिना ही अणु अर्थात् लघुतम पदार्थ को भी अपने समान बलशाली बना देता है। 'यह शिवत्व के उद्रेक की दृष्टि से करता है' ऐसा श्रुति कहती है॥१७२-१७४॥

आद्यनादी च मुक्ती द्वेऽनपेक्ष्य कुरुते बलम्।
अपयाते मले तस्मिन् सर्वत्रोदितदृक्क्रियः॥१७५॥

निरातङ्कं निराबाधं शिवत्वमधिगच्छति।
मतङ्गे च पराख्ये च अपृथक्कृत्यमीरितम्॥१७६॥

वह आदि और अनादि दोनों मुक्तियों की अपेक्षा न कर बल का आधान करता है। जब उसका आणव मल हट जाता है, तो वह सर्वत्र उदित ज्ञान-क्रिया वाला हो जाता है, फिर वह योगी बिना किसी भय अथवा बाधा के शिवत्व को प्राप्त करता है। यह तथ्य मतंग एवं पराख्य दोनों तन्त्रों में एकरूप से कहा गया है॥१७६॥

तयोपोद्वलिता चित् स्यात् चेतनोद्वलने क्षमा।
चैतन्यमपि तद्योगादनुगृह्णाति पुद्गलम्॥१७७॥

उस दृक्क्रिया से उद्वलित चित् चेतन के उद्वलन में सक्षम होती है। चैतन्य भी उस चित् के योग से पुद्गल को अनुगृहीत करता है॥१७७॥

संसिद्धः शिववत् कर्ता न मोक्षे पक्षपातता।
सर्वतः कृतकृत्यश्चिद्विकृतिस्तत्र नोद्भवेत्॥१७८॥

सिद्धयोगी शिव के समान कर्ता होता है। मोक्ष में पक्षपात नहीं, अर्थात् मुक्त पुरुष शिव से न्यूनशक्ति-सम्पन्न होते हैं, ऐसा नहीं है। जब चित् शक्ति सर्वविध कृतकृत्य हो जाती है, तब वहाँ विकार नहीं होता॥१७८॥

सर्वज्ञता तृप्तिरनादिबोधः
स्वतन्त्रता नित्यमलुप्तशक्तिः।
अनन्तशक्तिश्च निरामयात्मा
विशुद्धदेहः स शिवत्वमेति॥१७९॥

सर्वज्ञता, नित्यतृप्ति, नित्यज्ञान, स्वातन्त्र्य, शक्ति का कभी न्यून न होना और असीम शक्ति का होना— यह शिव के छः गुण योगी के अन्दर उपस्थित हो जाते हैं। इस प्रकार निरामय आत्मा वाला योगी विशुद्ध देह होकर शिवत्व को प्राप्त करता है।।१७९।।

नात्मच्छेदोऽपवर्गो न च पशुशिवयोरैक्यमत्रापवर्गो
नाविद्याग्रासहानिर्न च गुणविलयो नापि पाषाणमुक्तिः।
यद्बोधानन्दरूपं त्रिमलविगमने व्यक्तमात्मस्वरूपं
तत्सायुज्येन वाच्यं शिवसदृशविभुः शैवतन्त्रेऽपवर्गः।।१८०।।

इस शैवशास्त्र में आत्मा का उच्छेद मोक्ष नहीं है (जैसा कि बौद्धमत का सिद्धान्त है)। पशु और शिव का ऐक्य भी मोक्ष नहीं है। अविद्या से ग्रस्त होने का अभाव, गुणों का विलय भी मोक्ष नहीं है। जीव का पाषाण, के समान होना (जैसा कि नैयायिक कहते हैं) भी मोक्ष नहीं है। आणव मायीय और कार्म नामक तीन मलों के दूर हो जाने पर जो आनन्दरूप बोधात्मक आत्मा की अभिव्यक्ति है, वही शिवसायुज्य कहा जाता है और आत्मा का शिव के समान व्यापक होना ही शैवशास्त्र में अपवर्ग है।।१८०।।

नेदं सायुज्यकं सार्ष्टिरिति पक्षः पलायितः।
सायुज्यमिदमेवेति कामिकेऽपि समर्थितम्।।१८१।।

''यह सायुज्य नहीं, बल्कि सार्ष्टि है'' यह पक्ष यहाँ खण्डित हो जाता है। वस्तुतः यह सायुज्य मुक्ति ही है— ऐसा कामिक आगम में भी माना गया है।।१८१।।

ब्रह्मणाप्यन्यथाकर्तुमशक्यं लिख्यते मया।
त्रिमलापगमे व्यक्तशिवसाम्यत्वलक्षणम्।।१८२।।
आत्मरूपं चिदानन्दमयं सायुज्यनामकम्।

जो मैं (=ज्ञानप्रकाश) लिख रहा हूँ, ब्रह्मा भी इसको नहीं बदल सकते। त्रिविध मल के दूर होने पर शिवसाम्य रूप मोक्ष मिलता है, यह स्पष्ट है।।१८२।।

निजानन्दमहाम्भोधौ यदा मज्जेदनाकुलः।।१८३।।
सा मुक्तिः स तु निर्वाणस्तदेव परमं पदम्।

आत्मा का चिदानन्दमय हो जाना ही सायुज्य नामक मोक्ष है। योगी जब निजानन्द महासमुद्र में शान्त होकर डूब जाता है, तो वही मुक्ति है, वही निर्वाण है, वही परम पद की प्राप्ति है॥१८३॥

चिन्त्यविश्वोदितं शैवपुराणोक्तं च लिख्यते।।१८४।।

सकले निष्कले चैव सर्वत्रैव समानता।
सायुज्यमिति तत्प्रोक्तं सारूप्यं मूर्तितुल्यता।।१८५।।

चिन्त्य और विश्व नाम के आगमों में वर्णित तथा शैवपुराण में कथित विषय को यहाँ लिखा जा रहा है— सकल और निष्कल में सर्वत्र समानता रहती है। इसीको सायुज्य कहा गया है। सारूप्य का अर्थ है— मूर्ति के तुल्य हो जाना॥१८४-१८५॥

शिवसंक्रान्तिरस्माकं मुक्तिरेवेति केचन।
अमूर्तस्य च संक्रान्तौ न लोका न परीक्षकाः।।१८६।।

कुछ लोग कहते हैं कि शिवसंक्रान्ति ही हमारी मुक्ति है, किन्तु शिव तो अमूर्त है, फिर उसकी संक्रान्ति के विषय में न कोई समर्थ है और संक्रान्ति हुई या नहीं और हुई तो पूर्ण हुई या अपूर्ण, समीचीन हुई या असमीचीन— ऐसी परीक्षा करने वाला भी कोई नहीं है॥१८६॥

सर्वज्ञाद्यं शिवैश्वर्यं यत्तु स्वात्मनि राजते।
तत्सायुज्यमिति प्राहुर्वेदागमपरायणाः।।१८७।।

सर्वज्ञता आदि तो शिव का ऐश्वर्य है। जब यह अपने अन्दर विराजमान होता है, तो वेद एवं आगम के विद्वान् उसे सायुज्य कहते हैं॥१८७॥

संसारमण्डलं कृत्स्नमादिमध्यान्तसंस्थितम्।
सर्वमात्मनि पश्येत न च संयुज्यते विभुः।।१८८।।

सम्पूर्ण संसार मण्डल को, जो आदि, मध्य और अन्त अर्थात् पूर्णरूप से अपने में स्थित हुआ देखता है, वह विभु शिव से संयुक्त नहीं होता॥१८८॥

सर्ववस्तुष्वनुस्यूतमस्पृश्यं सर्ववस्तुभिः।
सर्वं व्याप्यावतिष्ठेत न च संयुज्यते प्रभुः।।१८९।।

समस्त वस्तुओं में अनुस्यूत होता हुआ भी सभी वस्तुओं से अस्पृश्य होकर सबको व्याप्त कर जो विराजमान रहता है, वह प्रभु भी संयुक्त नहीं होता॥१८९॥

इति श्रुतेः स मुक्तोऽपि न च संयुज्यते शिवे।
शिवतुल्यार्थसायुज्यदं शिवयोगरत्नकम्॥१९०॥

इस श्रुतिवचन के अनुसार मुक्त होने पर भी वह शिव से युक्त नहीं होता। यह शिवयोगरत्न नामक ग्रन्थ शिवतुल्य होने को शिवसायुज्य बतलाता है॥१९०॥

यस्य यत्राभिसंबन्धो दूरस्थस्यापि तत्र सः।
इति प्रबलमीमांसान्यायो मातङ्गबोधितः॥१९१॥

"दूरस्थ रहते हुए भी जिसका जिससे सम्बन्ध होता है, वह वहाँ रहता है" यह प्रबल मीमांसान्याय, मातङ्गेश्वरतन्त्र में भी बतलाया गया है॥१९१॥

तच्चेत्थमभिसंबध्य प्रकृतं संग्रहात्मकम्।
इदं व्यस्तं समस्तं वा भाषाभेदैर्न लिख्यताम्॥१९२॥

शिवदीक्षाविशुद्धाय साधवे देयमीरितम्।

उसको इस प्रकार समझ कर प्रस्तुत संग्रह किया गया है। इसको विस्तार या संक्षेप किसी भी प्रकार से अन्य भाषाओं में उपनिबद्ध नहीं करना चाहिये। केवल शिवदीक्षा से विशुद्ध मुमुक्षु को ही इसे देना चाहिये॥१९२॥

तदित्थंभूतं शिवात्मशिवस्वात्मशिवयोः स्वरूपलक्षणपरार्थ-स्वार्थसर्वार्थप्रत्यर्थं विषयनिर्विकल्पसविकल्पज्ञानक्रिया-वृत्तिकं स्वपरप्रकाशद्विरूपैकरूपचिच्छक्तिरूपं सच्चिदानन्दसर्वज्ञतादिगुणरूपं शिवत्वं तत्स्वरूपलक्षणप्रबोधकं शिवयोगरत्नं संपूर्णम्॥

इस प्रकार शिवात्म और शिवस्वात्म नामक दोनों शिवों के स्वरूप
लक्षण परार्थ-स्वार्थ सर्वार्थ प्रत्यर्थ वाले निर्विकल्प सविकल्प
ज्ञानक्रियावृत्तिवाले, स्वपरप्रकाशद्विरूप एकरूप चित्-
शक्तिवाले, सच्चिदानन्द सर्वज्ञतादिगुण वाले,
शिवत्व के स्वरूपलक्षण के प्रबोधक,
शिवयोगरत्न नामक ग्रन्थ की
पं. राधेश्याम चतुर्वेदी
कृत 'ज्ञानवती'
नामक हिन्दी
व्याख्या पूर्ण
हुई ।।



शिवयोगरत्नम्, उद्धृता ग्रन्था:



श्लोकार्धानुक्रमणी



पुस्तक परिचय

भारतीय धर्मदर्शन की शैवपरम्परा में दक्षिणभारत का शैव-सिद्धान्त विशेष महत्त्वपूर्ण एवं प्राचीन परम्परा है। तमिल भाषा में रचित सम्पूर्ण शैवशास्त्र को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है— स्तोत्र एवं शास्त्र। पूर्व का स्तोत्र साहित्य, जो उच्चकोटि के साधकों की आध्यात्मिक रचनाएँ हैं, वास्तव में उत्तरकाल के सैद्धान्तिक विकास का मूल स्रोत एवं आधार है। इन रचनाओं को बारह ग्रन्थों में संकलित किया गया है, जिन्हें 'तिरुमुरई' कहते हैं।

शैवसिद्धान्त दर्शन का द्वितीय स्तर मैकण्ड-शास्त्र से शुरू होता है, जो पूर्णत: अद्वैतवादी दृष्टिकोण का प्रतिपादन करता है। बारहवीं शताब्दी में श्रीकण्ठ द्वारा रचित ब्रह्मसूत्रभाष्य शिवाद्वैतवाद का प्रतिपादक है।

तेरहवीं शताब्दी में मैकण्डदेव द्वारा विरचित 'शिवज्ञानबोधम्' की संस्कृत प्रति रौरव आगम में प्राप्त होती है, ऐसा कहा जाता है। परन्तु यह निर्विवाद रूप से प्रतिपादित नहीं हो पाया है। इस सूत्र-ग्रन्थ के बाद इसी क्रम को विकसित करते हुए जिन ग्रन्थों की रचना हुई है, उनका विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है—

१. मैकण्डदेव के शिष्य सन्त अरुलनन्दी शिवाचार्य ने शिवज्ञानबोधम् के विशद भाष्य के रूप में शिवज्ञानसिद्धियार नामक एक स्वतन्त्र ग्रन्थ की रचना की है। २. चौदहवीं शताब्दी में सन्त अरुलनन्दी शिवाचार्य के शिष्य सन्त उमापति शिवाचार्य ने शिवप्पिरकाशम् नामक एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ की रचना की है। ३. सोलहवीं शताब्दी में पाण्डिप्पेरुमाल एवं और कई विशद ग्रन्थों की रचनाएँ हुई, उनमें मापाडियम् (महाभाष्य) विशेष महत्त्वपूर्ण है।

शिवज्ञानसिद्धियार के रचयिता सन्त अरुळनन्दी शिवाचार्य एक महान् दार्शनिक भी थे। उनकी विद्वत्ता के कारण उन्हें सकलागमपण्डित के रूप में अभिहित किया जाता है। उक्त ग्रन्थ की रचना दो भागों में की गई है— (१) परपक्कम् (परपक्ष), (२) सुपक्कम् (स्वपक्ष)। यहाँ तीन सौ अट्ठाईस (३२८) पदों के माध्यम से शैवसिद्धान्त के मुख्य तात्त्विक विषयों का विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

ज्ञानप्रकाशर— जो पुन: सोलहवीं शताब्दी के हैं, शिवज्ञानसिद्धियार के वृत्ति-ग्रन्थ के रूप में 'शिवयोगरत्नम्' की रचना की। ज्ञानप्रकाशर ने सरल भाषा में शिवज्ञानसिद्धियार के तात्त्विक विवेचन पर 'शिवयोगरत्नम्' नामक जिस ग्रन्थ की रचना की है, वह शिवयोग पर विशेष मूल्यवान् ग्रन्थ है। उक्त ग्रन्थ में विद्वान् लेखक ने शिवयोग की विशिष्टता का प्रतिपादन किया है।

शैवभारती शोध प्रतिष्ठान

डी. 35/77, जंगमवाडीमठ

वाराणसी-221001

Price : Rs. 150.00